राजभाषा बोधिनी ५

RAJABHASHA BODHINI 5

HINDI READER

FOR

FORM VI

T 79
R 14

PRINTED BY
AT THE GOVERNMENT CENTRAL PRESS,
TRIVANDRUM
1954

राजभाषा बोधिनी ५

RAJABHASHA BODHINI 5

HINDI READER

FOR

FORM VI

T 79
R 14

DHARMARAM COLLEGE LIBRARY
15661

DEFINITORY T. O. C. D. LIBRARY
No.........

EDITED BY A COMMITTEE APPOINTED
BY GOVERNMENT

Price Re. 1.

1954

Members of the Committee:—

1. Sri A. Chandrahasan
(Convener)

2. Pandit Avadhanandan
(Secretary, Tamil Nad H. P. Sabha)

3. Sri P. K. Kesavan Nair.

4. Sri S. Sankararaju Naidu.

5. Sri C. G. Abraham.

6. Sri K. Kesavan Nair.

DHARMARAM COLLEGE LIBRARY, BANGALORE.
13601

61|86|V

ACKNOWLEDGMENT

The Special Officer for Text Books, Government of Travancore-Cochin State hereby acknowledges with thanks to the following Authors and Publishers for the kind permission accorded by them to reproduce their copyright materials in this book:—

(1) Sri Ramanath Sumon, Sadhana Sadan, 77 Lukerganj, Allahabad-1, for "Hamara Desh."

(2) Sri Jivanji D. Deshai, Managing Trustee, Navjivan Trust, Ahamedabad-9, for "Chori Aur Prayaschit" from "Samkshipta Atmakadha by Mahatma Gandhi."

(3) Messrs. Saraswathi Press, Sardar Patel Marg, Allahabad-1, for "Radio" from the book "Sahitia Sudha."

(4) The U. P. Government for "Madan Mohan Malavya" and "Aspatal" from Basic Hindi Reader Bk. V—Published by the U. P. Government.

(5) Messrs. Kapoor Bros., Ltd., 16 A|2, Karol Bagh, New Delhi-5, for the play "Thyag."

(6) Messrs. Nandkishore and Bros., Publishers & Booksellers, Chowk, Banares-1, for "Kasi", "Vyjnanik Unnathi" and "Pradhama Darsan" from the book "Bharathi Part II."

(7) Sri Indira Vidiyavachaspathi, Sradhhanand Bhavan, Delhi, for "Yek Maharastra Veer".

(8) Sri Vinaya Mohan Sarma, Dharampeth, Ambazari Road, Nagapur for "Holi".

(9) Sri Avadhanandan, Hindi Prachar Sabha, Tennur, Tiruchirappally for "Santh Kabir".

(10) Sri A. Chandrahasan, Professor of Languages, Maharajah's College, Ernakulam for "Bhoodan Yajn."

(11) Messrs. The Indian Press (Publications) Ltd., 36, Pannalal Road, Allahabad for "Himalaya Ki Sub say Unchi Chodi pur" and "Junma Bhoomi" from "Balasaka."

(12) Sahitya Retna Sri S. Sankararaju Naidu, M. A., Head of the Department in Hindi, Madras University for the poem "Charka."

(13) Sri Siyaram Saran Gupt, Sahitya Sadan, Chiragav, Jhansi (U. P.) for the poem "Janani."

(14) Sri Pandit Ramnaresh Tripati, Hindi Mandir, Prayag, Allahabad for "Yuvak Ko Muni Ka Upadesh."

(15) Sri Arsi Prasad Singh, Tharamantal, Rajendra Padh, Patna-1, for 'Vijaya Desami'.

Padmavilas, K. NARAYANAN NAIR,
20-5-1954. *Special Officer for Text Books.*

विषयसूची

गद्यभाग

पाठ		पृष्ठ
१.	हमारा देश (श्री. रामनाथ सुमन)	1
२.	चोरी और प्रायश्चित्त (महात्मा गांधी)	5
३.	रेडियो (संकलित)	11
४.	मदन मोहन मालवीय (संकलित)	18
५.	त्याग (एकांकी नाटक)	23
६.	काशी (संकलित)	31
७.	वैज्ञानिक उन्नति (शंभुदयाल सक्सेना)	34
८.	प्रथम दर्शन (बाबू राजेन्द्रप्रसाद)	38
९.	अस्पताल (संकलित)	43
१०.	एक महाराष्ट्र वीर (इंन्द्र विद्यावाचस्पति)	48
११.	होली (विनयमोहन शर्मा)	54
१२.	संत कबीर (पं० अवधनंदन)	59
१३.	भूदान-यज्ञ (ए. चंद्रहासन)	64
१४.	हिमालय की सब से ऊँची चोटी पर (देवेद्रनाथ अवस्थी)	67

पद्यभाग

१५. चर्खा (सु. शंकरराजू नायुडू) 72
१६. जननी (सियारामशरण गुप्त) 73
१७. जन्मभूमि (कामताप्रसाद गुरु) 76
१८. युवक को मुनि का उपदेश (रामनरेश त्रिपाठी) 79
१९. विजया-दशमी (आरसी प्रसाद सिंह) 82
२०. कबीर के दोहे 85
२१. रहीम के दोहे 86
२२. वृन्द के दोहे 88

राजभाषा बोधिनी ५

पाठ १

हमारा देश

हमारा देश भारत विश्व के देशों में अत्यन्त महान है। यह महानता केवल इस बात में नहीं है कि यह विशाल और सम्पत्तिशाली देश है और यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है, वरन इसकी सभ्यता, इसके ज्ञान और इसके लंबे इतिहास के कारण भी है। शरीर और आत्मा दोनों दृष्टियों से हमारा देश ऐसा है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं, जिसमें उत्पन्न होने का हमें अभिमान हो सकता है!

पहले इसकी बाहरी महानता को लीजिये। हम छत्तीस करोड़ से कुछ अधिक ही हैं अर्थात् हमारी संख्या मानवजाति का पाँचवां अंश है। सरल शब्दों में इसे यों कह लीजिए कि प्रत्येक पाँच मनुष्यों में एक भारतवासी है। चीन को छोड़कर हमारी संख्या संसार में किसी भी देश की जनसंख्या से अधिक है। विशालता की दृष्टि से देखें तो उत्तर से दक्षिण या पूर्व से पश्चिम तक वह लगभग दो हज़ार मील लंबा चौड़ा है। हमारे देश के प्रांतों की तो बात छोड़िए, कितने ही जिले यूरोप के राज्यों से बड़े हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से देखिए, इसके सिर पर हिमालय का किरीट है, जिसने हमारा हज़ारों वर्ष का इतिहास देखा है और लाखों वर्ष से हमारे देश का रक्षक रहा है।

कैसा सुन्दर है यह हिमालय! जब इसकी चोटियों पर सूर्य की बालकिरणें पड़ती हैं तो चारों ओर स्वर्ण-राशि बिखर जाती है। जब चाँदनी आती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों दूध में चोटियाँ नहा रही हों। इसकी प्राकृतिक छटा एक बार नेत्रों में पैठकर सदैव के लिए अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। इसी प्रकार दक्षिण में पूर्वी और पश्चिमी तट पर पहाड़ों की एक एक शृंखला है, मध्य में विंध्य, सतपुड़ा और अरावली की पहाड़ियाँ मेखला की भाँति फैली हुई हैं। इन पहाड़ों से निकलकर गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी, महानदी इत्यादि अनेक नदियाँ मैदानों को सींचती और हमारे देश को उपजाऊ बनाती हैं। गंगा यमुना का हमारी सभ्यता के विकास में बहुत बड़ा हाथ रहा है। इन पहाड़ों और नदियों के किनारे प्राचीन काल में अनेक ऋषियों और ज्ञानियों के आश्रम थे जहाँ हमारे बच्चे स्वास्थ्य के साथ-साथ ज्ञान प्राप्त करते थे, इनमें हमारे अनेक तीर्थ हैं जहाँ की

यात्रा कर हम प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते थे और ज्ञान प्राप्त करते थे।

इन पहाड़ों और नदियों का हमारे देश पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इन्होंने हमारी सभ्यता के विकास में जो कार्य किया है उसका वर्णन तो हम ऊपर कर ही चुके हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु, पृथ्वी की बनावट, उपज तथा हमारी प्रकृति पर भी इनका बहुत प्रभाव पड़ा है। केवल हिमालय ही हमारे देश के रक्षण और पालन में इतना भाग लेता है कि हम उसके ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकते। मध्य एशिया की रेगिस्तानी आँधियों को इसने सदा के लिए इधर आने से रोक दिया है। यदि हिमालय बीच में पड़ कर हमारी रक्षा न करता तो जहाँ आज उत्तरभारत में सस्यश्यामला भूमि फैली हुई है वहां रेगिस्तान होता। इसके कारण ही इन भागों में अच्छी वर्षा होती है तथा इसके निर्मल जल से पूरित सरिताएें हमारी भूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती रहती हैं।

भारत इतना महान और विचित्र देश है कि इसमें एक साथ अनेक ऋतुओं का आनन्द लिया जा सकता है। यहाँ अनेक प्रकार की जलवायु मिलती है। जिस समय सिंध के जैकोबाबाद में १२० से १२५ अंश तापमान में लोग झुलस रहे होते हैं और जिन दिनों काशी, प्रयाग, दिल्ली और मुलतान के लोग लू के डर से घरों से निकलने में डरते हैं, उन दिनों काश्मीर

मंसूरी, दारजिलिंग, शिलांग, महाबलेश्वर, उटकमंड और शिमला में हल्की सर्दी पड़ती है, और आनन्द से जीवन व्यतीत होता है। केरल में जल और हरियाली है तो राजस्थान में बालू के स्वच्छ मैदानों पर फैली चाँदनी की शोभा है। कहीं भूमि खोदते ही पानी निकल आता है, इतने निकट कि मकान की गहरी नींव देना भी कठिन होता है और कहीं सैकड़ों फुट नीचे भी पानी निकलता है।

प्रकृति ने न केवल हमें विस्तृत उपजाऊ भूमिखंड तथा विशाल अन्नभंडार दिया है बल्कि कोयला, लोहा, सोना, अभ्रक, चूना इत्यादि की राशि भी हमें सौंपी है जिसके कारण सचमुच यहाँ की भूमि का रत्नगर्भा नाम सार्थक है। हमारी ऐसी विशालता, ऐसी उपजाऊ भूमि, ऐसी जलवायु, ऐसा शक्तिभण्डार संसार के किसी देश के पास नहीं है।

निस्सन्देह भारत—हमारा देश—प्रत्येक बात में ऐसा है जिस पर हम उचित रूप से गर्व कर सकते हैं। पर क्या हम भी ऐसे हैं जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है?

देवता भी इस भूमि के लिए तरसते थे। वे भी इसका गौरव-गान करते थे, और आज हम हैं कि अपना सिर ऊँचा करके दुनिया की ओर देख नहीं सकते। हम में से प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने पूर्व गौरव का योग्य अधिकारी बनने का प्रयत्न आज ही आरंभ कर दे, यदि हम में से प्रत्येक व्यक्ति जिस क्षेत्र में वह हो वहाँ की स्थिति

अधिक अच्छी करने में जी-जान से लग जाय तो निश्चित है कि हम इस देश की महत्ता के अनुरूप अपने को बना सकते हैं।

पाठ २

चोरी और प्रायश्चित्त

मांसाहार के समय के और उसके पहले के अपने कुछ दूषणों का वर्णन करना अभी बाकी है। वे या तो विवाह के पहले के हैं या कुछ ही बाद के।

अपने एक रिश्तेदार की सोहबत में मुझे सिगरेट पीने का शौक हुआ। पैसे तो हमारे पास थे नहीं। सिगरेट पीने के किसी फायदे या उसकी गंध के मज़े से तो हम दोनों में से कोई भी परिचित नहीं था, पर धुआं उड़ाने में ही कुछ मज़ा आता था। मेरे चाचाजी को सिग़रेट पीने की आदत थी, और उन्हें तथा औरों को धुआँ उड़ाते हुए देखकर हमें भी 'फूक लेने' का शौक हुआ। पैसे पास न होने के कारण हमने चाचाजी की सिगरटों के बचे, फेंके हिस्सों को चुराना शुरू किया।

परन्तु ये टुकड़े हमेशा नहीं मिल पाते थे, और उस में से ज्यादा धूआँ भी नहीं निकल सकता था। इसलिए नौकरों की जेबों में पडे दो-चार पेसों में से हम बीच-बीच में एकाध चुराने लगे औ उससे सिगरेट पीने लगे, पर

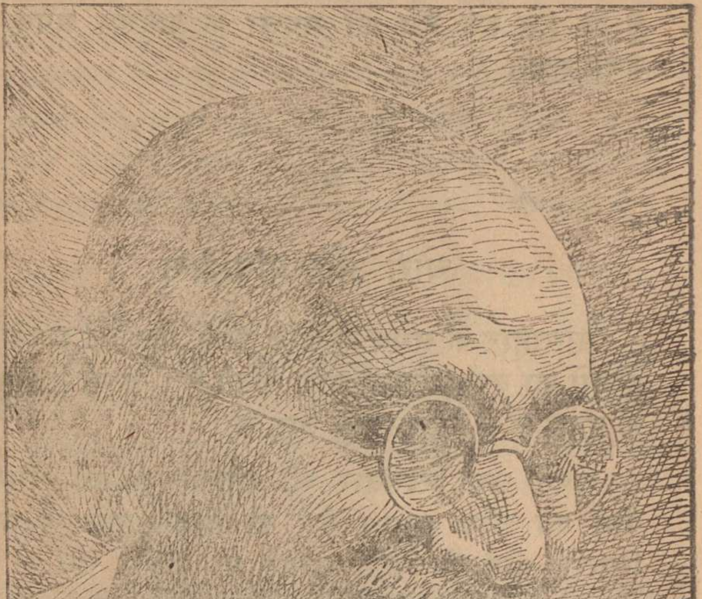

छिपाकर रखने की समस्या सामने आई। इतना ख्याल था कि बूढ़ों के सामने सिगरेट पीना संभव नहीं है।

ज्यों-त्यों दो-चार पाई-पैसे चुराकर कुछ हफ्ते काम चलाया। इसी बीच सुना कि एक पौधा (उसका नाम भूल गया) होता है जिसका डंठल सिगरेट की तरह जलता है, और वह पिया जा सकता है। हमने वह लाकर धुआँ उड़ाना शुरू किया।

पर हमें सन्तोष न हुआ। अपनी पराधीनता हमें खलने लगी। यह बड़ा कष्टदायक जान पड़ा कि बड़ों की आज्ञा के बिना कुछ भी न हो सके। हम बहुत परेशान हो गए और अंत को आत्महत्या करने का निश्चय किया।

परन्तु आत्महत्या कैसे करें? जहर कहाँ से लावें? हमने सुना कि धतूरे के बीज से मृत्यु होती है। जंगल में घूम-फिरकर बीज लाय। खाने का समय शाम को रखा। केदारजी के मंदिर की दीपमाला में घी चढ़ाया, दर्शन किये और फिर एकांत में चले गय, पर जहर खाने की हिम्मत न हुई। "तत्काल मृत्यु न हो तो? मरने से लाभ क्या होगा? पराधीनता में ही क्यों न पड़े रहें?" ये विचार मन में आने लगे। फिर भी दो-चार बीज खा ही डाले; पर ज्यादा खाने की हिम्मत न हुई, दोनों मौत से डर गये। निश्चय किया कि चलकर रामजी के मंदिर में दर्शन करें और शांति से बैठें एवं आत्महत्या की बात मन से भुला दें।

तब मैंने समझ लिया कि आत्महत्या का विचार करना सरल है ; पर आत्महत्या करना नहीं। इससे जब कोई आत्महत्या करने की धमकी देता है, तब मुझपर उसका बहुत कम असर होता है, या यह भी कह सकता हूँ कि बिलकुल नहीं होता।

आत्महत्या के निश्चय का एक परिणाम यह हुआ कि हमारी जूठी सिगरेट पीने की, नौकरों के पैसे चुराने की और उससे सिगरेट खरीद कर पीने की आदत ही जाती रही। बड़ा होने पर मुझे कभी सिगरेट पीने की इच्छा तक नहीं हुई, और मैं सदा इस आदत को जंगली, हानिकारक और गंदी मानता आया हूँ। अब तक मैं यह समझ न पाया कि सिगरेट-बीडी का इतना जबर्दस्त शौक दुनियाँ में क्यों है ? रेल के जिस डिब्बे में बीड़ी-सिगरेट का धुआँ उड़ता है वहां बैठना मेरे लिए कठिन हो जाता है और उसके धुएँ से मेरा दम घुटने लगता है।

सिगरेट के टुकड़े और उसके लिए नौकरों के पैसे चुराने के अपराध के सिवा अन्य एक चोरी का जो अपराध मुझसे बन पड़ा, उसे मैं अधिक गंभीर मानता हूँ। सिगरेट के अपराध के दिनों तो मेरी उम्र १२-१३ वर्ष की होगी, शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरी के समय १५ साल की रही होगी। यह चोरी थी मेरे मांसाहारी भाई के सोने के कड़े के टुकडे चुराने की। उन्होंने २५) के लगभग कर्ज कर लिया था। हम दोनों

भाई इसे चुकाने के चक्कर में थे। मेरे भाई के हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से तोला-भर काट लेना कठिन न था।

कड़ा कटा और कर्ज़ निपट गया; पर मेरे लिए यह बात असह्य हो गई। आगे से चोरी न करने का मैंने निश्चय किया। यह भी सोचा कि पिताजी के सामने इसे कबूल करना चाहिये, पर ज़बान खुलनी कठिन थी। यह डर तो नहीं था कि पिताजी मुझे पीटेंगे। क्योंकि याद नहीं पड़ती कि उन्होंने हम भाइयों में से किसी को कभी पीटा हो; पर यह डर ज़रूर था कि वह खुद बड़े दुःखी होंगे और शायद अपना सिर भी धुन डालेंगे! पर सोचा कि यह खतरा उठाकर भी अपना दोष स्वीकार करना ही उचित है। ऐसा लगा क इसके बिना शुद्धि नहीं होगी।

अन्त में मैंने पत्र लिखकर अपना दोष स्वीकार करते हुए माफी माँगने का निश्चय किया। मैंने पत्र लिखकर अपने हाथ से उन्हें दिया। पत्र में सब दोष स्वीकार किया था और दंड माँगा था। विनय की कि मेरे अपराध के लिए अपने को कष्ट में न डालें और प्रतिज्ञा की थी कि भविष्य में ऐसा अपराध फिर न करूँगा।

मैंने कांपते हाथों यह पत्र पिताजी के हाथ में दिया। मैं उनके तख्त के सामने बैठ गया। इन दिनों उन्हें भगंदर रोग उभरा हुआ था, इसलिए वह बिस्तरे पर ही पड़े रहते थे। खाट के बदले तख्त काम में लाते थे।

उन्होंने पत्र पढ़ा। आँखों से मोती की बूदें टपकीं पत्र भीग गया। तनिक देर के लिए उन्होंने आँखें मूँदीं और पत्र फाड़ डाला; और पत्र पढ़ने को बैठे हुए थे सो फिर लेट गये।

मैं भी रोया। पिताजी की पीड़ा का मने अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी वह चित्र हूबहू खींचकर रख देता। मेरी आँखों के सामने आज भी वह दृश्य नाच रहा है।

इस मुक्ता-बिन्दुओं के प्रेम-बाण ने मुझे बेंध दिया। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है।

मेरे लिए यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-प्रेम का ही अनुभव हुआ था; पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण करने पर उससे कौन अछूता रह सकता है। ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति का अनुमान करना शक्ति से परे है।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिताजी के स्वभाव के प्रतिकूल थी। मैंने सोचा था कि वह गुस्सा होंगे, फटकारेंगे, शायद अपना सिर मार लें; पर उन्होंने तो असीम शान्ति का परिचय दिया। मैं समझता हूँ कि वह दोष की शुद्ध हृदय से की गयी स्वीकृति का परिणाम था। जो मनुष्य अधिकारी व्यक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक

अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मैं जानता हूँ कि मेरे इस इकरार से पिताजी मेरे संबध में निर्भय हो गये और उनका प्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया।

पाठ ३

रेडियो

रेडियो एक विचित्र यंत्र है। यह हारमोनियम जैसा एक छोटा यंत्र होता है; पर उससे दूर-दूर देशों में होनेवाली वक्तृता, गाना, समाचार जो चाहे सुन लीजिए। अब तो यह यंत्र कहीं-कहीं बड़े-बड़े गाँवों में भी पहुँच गया है। जरा-सी सुई घुमाई, कलकत्ता पहुँच गये; वहां के गाने सुनिए, बाज़ार-भाव जानिये, समाचार सुनिये। फिर मन ऊब जाय तो सुई घुमाकर बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क, दिल्ली, पटना, लखनऊ, मद्रास चाहे जिस बड़े नगर में पहुँच जाइए, और वहाँ के रेडियो स्टेशनों पर होनेवाले हरएक कार्यक्रम का आनन्द लूटिए।

इस आश्चर्यजनक यंत्र को रेडियो-रिसावर कहते हैं। किसी-किसी नगर—जैसे मद्रास और ट्रिवेन्ड्रम—में बड़े-बड़े खंभों पर तारों का जाल लगा हुआ दिखाई

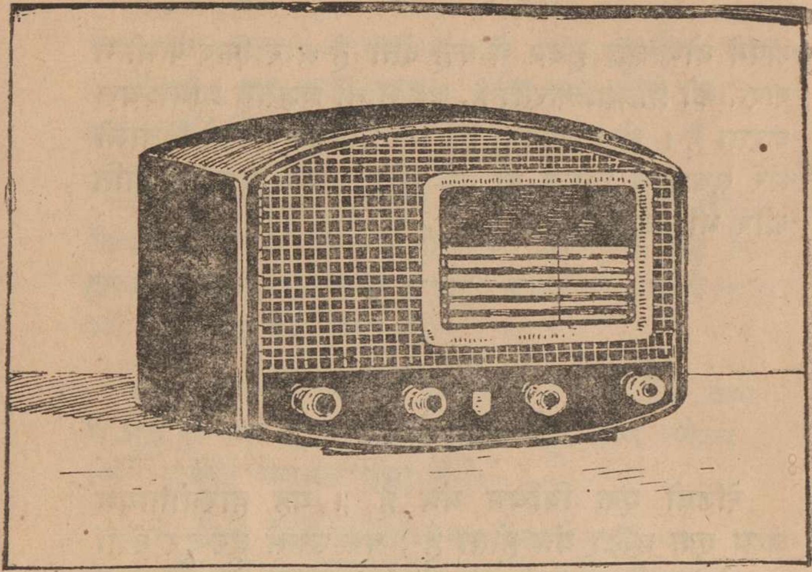

देता है। इन खंभों के नीचे कमरे में एक यंत्र रहता है, जहाँ से इच्छानुसार अपने शब्दों को आकाश-मार्ग में भेज सकते हैं। यह शब्द बिजली की लहर के साथ खंभों के तारों से निकल कर आकाश-मार्ग में सहस्त्रों मील की दूरी पर रेडियो-रिसीवर द्वारा आधुनिक विज्ञान का सन्देश सुना देते हैं। जो यंत्र शब्द भेजता है, उसे रेडियो-ट्रांसमिटर कहते हैं।

हमारे पुरखे तो तभी दांतों-तले अंगुली दबाते थे जब सैकडों मील दूर की खबरें तार द्वारा सुनते थे। धीरे-धीरे हम लोग समझने लगे कि बिजली की धारा तार

पर जाती है और उसीके द्वारा हमारे पास खबर आती है। परन्तु इस बात का अनुमान न होता था कि बिजली की अदृश्य धाराएं आकाश-मार्ग का चक्कर भी लगा सकती हैं। और फिर कोई ऐसे यंत्र भी बनाये जा सकते हैं, जो इच्छानुसार इन धाराओं को आकाश-मार्ग में भेज सकें एवं उनके प्रभाव को प्रत्यक्ष भी कर सकें।

इधर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से आधुनिक वैज्ञानिकों के असीम परिश्रम द्वारा हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि बिजली को तार के खंभों पर दौड़ने की आवश्यकता ही नहीं रही। अब हम घर बैठे हुए, तथा प्रशान्त-सागर के मध्य जहाज पर भी बिना किसी तार के संसार के आमोद-प्रमोद की वार्ता सुनकर आनंद उठा सकते हैं।

रेडियो का सिद्धांत क्या है और किस प्रकार यह सिद्धांत वैज्ञानिकों के उद्योग से जन-सेवा के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है, इसकी कथा बड़ी मनोरंजक है।

हमारे देश के महर्षियों ने विश्व को पाँच तत्वों के मेल से बना हुआ माना था—जल, अग्नि, आकाश, वायु और मिट्टी। तुलसीदास ने भी कहा है—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा।।

इन पांच तत्वों में से औरों का तो हमें अपनी इंद्रियों द्वारा ज्ञान हो जाता है; परन्तु आकाश का अनुभव हम नहीं कर सकते। यह आकाश वह आकाश नहीं है, जिसे हम नीले चँदोवें-जैसा हमेशा अपने ऊपर देखा करते हैं। यह वह आकाश है जो सर्वत्र है–ठोस-से-ठोस पदार्थ से लेकर विश्व के उस भाग में भी, जहाँ वायु तक नहीं है। इस आकाश को अंग्रेजी में "ईथर" कहते हैं।

इस ईथर पर जब बिजली की शक्ति का आघात होता है, तो उसमें एक प्रकार की वैसी ही लहरें उत्पन्न हो जाती हैं जैसी किसी जलाशय में ईंट फेंकने से उत्पन्न होती हैं। जितने ज़ोर का आघात होगा उतनी ही दूर तक लहरें जायेंगी; और जितनी शीघ्रता से एक के बाद दूसरा आघात होता जायगा, उतनी ही शीघ्र लहरें एक दूसरे के पीछे चलेंगी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से वैज्ञानिकों को बिजली द्वारा ईथर के कंपन का ज्ञान होने लगा। १८६० ई० तक हर्टज*नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने बिना किसी तरह के संबन्ध के बिजली की लहरों को एक यंत्र से दूसरे यंत्र तक पहुंचा दिया, परन्तु इसके आगे वह लहरों

---

* एक जर्मन वैज्ञानिक – जीवनकाल १८५४ से १८९५ ई० तक।

को न ले जा सका। हर्टज के पश्चात् हमारे देश के आचार्य जगदीशचन्द्र वसु ने भी इस विषय की खोज आरंभ की। उन्होंने ईथर में बिजली की लहर पैदा करने और लहरों के अस्तित्व का निर्णय करनेवाले एक बहुत उत्तम यंत्र का आविष्कार किया। परन्तु इसके आगे उन्होंने भी बहुत खोज नहीं की।

इसी काल में संसार के अन्य बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी बेतार की विद्युत-तरंग की खोज में लगे हुए थे। विद्युत-तरंग का संचालन तो होने लगा था, परन्तु जब तक उसका अनुभव करनेवाले यन्त्र का आविष्कार न हो, तब तक इन तरंगों का संचालन व्यर्थ था। इस विद्युत तरंग के अनुभव करने के ढंग का ब्रैनली* नामक वैज्ञानिक ने आविष्कार किया। उसने यह प्रमाणित किया कि जब इस अदृश्य बिजली की लहर धातु के महीन चूरे से भरी हुई शीशे की नली में पहुँचती है, तब वह चूरे के परमाणुओं को एक विचित्र प्रकार से पार कर लेती है। इस अन्वेषण को लेकर उस यंत्र का आविष्कार हुआ है जिसे रेडियो-रिसीवर कहते हैं।

अभी तक बेतारकी बिजली का प्रयोग केवल वैज्ञानिकों की खोज की ही वस्तु थी। इस वैज्ञानिक खोज को जन-सेवा के योग्य बनाने का काम सबसे पहले मारकोनी ने किया।

---

* एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक—जन्मकाल १८४४ ई०।

मारकोनी का जन्म १८७४ ई० में हुआ था। बाल्य-काल से ही इन्होंने वैज्ञानिक खोज में ख्याति प्राप्त कर ली। इटली इनकी जन्म-भूमि थी, परन्तु अपनी बहुत कुछ वैज्ञानिक खोज इन्होंने इंगलिस्तान में की, और अब तो यह अपने आविष्कार के नाते जगत-प्रसिद्ध हैं। इक्कीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने बेतार की खबर भेजने का यंत्र बना लिया। निकट के स्थानों को खबर भेजने में यह शीघ्र सफल हुए, परन्तु दूरस्थ स्थानों तक तरंग भेजने में इन्हें विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक तो शक्तिशाली विद्युत की आवश्यकता थी, दूसरे उस बिजली के आघात को ईथर में किसी ऊँचे स्थान तक प्रवाहित करना आवश्यक था। अनवरत उद्योग के पश्चात् १९१० ई० में यह इंगलिस्तान से अमेरिका तक विद्युत तरंग दौड़ाने में सफल हुए। अभी मारकोनी को तार के 'खट-खट' जैसे संकेत को ही भेजने में सफलता मिलती थी। टेलीफोन का आविष्कार तो हो ही चुका था, इसलिए यह आविष्कार भी रेडियो के काम में लाया गया। फलतः मनुष्यों की आवाज भी ईथर की लहरों पर चढ़कर संसार का चक्कर लगाने लगी, और इन लहरों को पकड़नेवाले यंत्र भी आविष्कृत हो गये।

मारकोनी ने अपने यन्त्र से एक तार को गुब्बारे के सहारे बहुत ऊँचे तक पहुँचा कर विद्युत प्रवाह किया था। अब इस भद्दे ढंग की आवश्यकता नहीं रही है। अब खबर भेजनेवाले भवन के ऊपर ऊँचे-ऊँचे खंभों में लगे तारों

का जाल वही काम देता है। पहले विद्युत-तरंग चारों ओर बहती थी; अब उसको एक ही ओर बहाने का आविष्कार हो गया है।

खबर भेजने के जितने बड़े-बड़े स्थान हैं, वे लहर की शक्ति सूचित कर देते हैं। खबर लेनेवाले यंत्र में चाभी लगाकर उस यंत्र को इच्छित शक्ति का भी बना सकते हैं। तभी उसमें से खबर भेजनेवाले स्थान के शब्द बहुत साफ साफ सुनाई देने लगते हैं। तार के टेलीफोन देश के एक भाग से दूसरे भाग तक लगे हुए हैं, परन्तु उनके द्वारा बातचीत बहुत साफ नहीं सुनाई देती। अब बेतार के टेलीफोन भी लगने प्रारंभ हो गये हैं। इस प्रकार इंगलिस्तान और भारत के बीच भी बेतार के टेलीफोन का प्रबन्ध हो गया है। इससे थोड़े ही समय में देश के किसी दुर्गम और निर्जन स्थान में बैठे हुए हम संसार के किसी भाग से वार्तालाप कर सकते हैं।

कुछ समय से रेडियो द्वारा चित्र भी भेजे जाने लगे हैं, और रेडियो द्वारा बड़े-बड़े यन्त्रों, जहाज़ों और वायुयानों तक को चलाने की चेष्टा की गई है। फिर क्या है, लखनऊ के नाटक–शब्द और चित्र सहित–एक ही समय में लन्दन और टिंबकटू, केपटाउन और न्यूयार्क के दर्शक देख सकेंगे।

पाठ ४

मदन मोहन मालवीय

जिन ब्राह्मणों ने मालवा की भूमि को अपने तप और साधन से पवित्र किया है, उन्हीं के कुछ परिवार उत्तर प्रदेश में भी आ बसे हैं। उन्हीं में से एक परिवार प्रयाग में बसा और उस दिव्य ज्योति को उसने उत्पन्न किया, जो भारत में महामना मदन मोहन मालवीय के नाम से विख्यात हुए।

मदन मोहन मालवीय साधारण पुरोहित के कुल में जन्मे। इनके पिता कथावाचक थे और राम की कथा प्रेम से अपने श्रोताओं को सुनाया करते थे। स्वाभाविक था कि ऐसे वातावरण में पलनेवाला बालक राम-भक्त और पवित्र भाववाला हो।

जहाँ तक मन की पवित्रता की बात है, संसार में कम महापुरुष इस युग में हुए जिनकी आत्मा इतनी पवित्र थी, जितनी मालवीय जी की। साधारण शिक्षा प्राप्त कर आप पहले शिक्षक हुए परन्तु आपकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर मित्रों ने आपको कानून पढ़ने की राय दी।

उस समय भारत के बड़े-बड़े नेता सभी वकील थे। मालवीयजी ने भी वकालत पास कर प्रयाग के हाईकोर्ट में काम करना शुरू कर दिया। यद्यपि उनमें योग्यता

पं० मदन मोहन मालवीय

अपार थी, यह स्पष्ट हो गया कि वकीलों के दांव-पंच उनके वश के नहीं। फिर उन्हें यह भी जान पड़ा कि देश की सेवा केवल वकालत से रुपया पैदा कर के नहीं हो सकेगी। अतः उन्होंने शीघ्र वकालत छोड़ दी।

उस समय भारत के नेताओं में स्वतंत्रता की भावना जग उठी थी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव बंबई और पूना में डाली जा चुकी थी। दूसरा अधिवेशन मद्रास में हुआ और मदन मोहन के युवा हृदय में भी आजादी के

बवंडर उठने लगे। कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह के साथ आप मद्रास पहुँचे और उस अधिवेशन में जो आप बोले तो लोग चकित रह गये।

मालवीयजी तब केवल चौबीस वर्ष के थे। उन्हें अभी बहुत कुछ सीखना था, बहुत कुछ अनुभव पाना था। स्कूल, कालेजों में तो वह जहाँ-तहाँ व्याख्यान दे चुके थे; परंतु देश के खुले आंगन में, विद्वानों की सभा में, यह उनका पहला व्याख्यान था। एक-से-एक बोलनेवाले दादाभाई नौरोजी, उमेशचंद्र बैनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी वहाँ उपस्थित थे। मालवीयजी बोले और अपनी मधुर वाणी तथा ज्ञान और साहस भरे व्याख्यान से उन्होंने वृद्धों को चकित कर दिया। लोगों ने जाना कि भारत का भावी वक्ता, वह चौबीस वर्ष का कोमल नौजवान ही होगा और हुआ भी यही। उनके जीवनकाल में हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में व्याख्यान देने में कोई उनका मुकाबला न कर सका। परन्तु मालवीय जी ने अपने जीवन में जो काम किये, उनके सामने ये व्याख्यान कुछ न थे। भारतीय राष्ट्र का यह सुन्दर केन्द्र काशी विश्वविद्यालय, जिसके विद्यार्थियों ने भारत की आज़ादी की लड़ाई में अपने को झोंक दिया था, इन्हीं महामना का स्थापित किया हुआ है।

इस विश्वविद्यालय की स्थापना की कहानी भी असाधारण है। युवक मालवीय ने आरंभ से ही एक हिन्दू विश्वविद्यालय की कल्पना कर रक्खी थी। परन्तु

स्वयं उनके पास क्या था जो इतनी ऊँची कल्पना को वे पूरा कर सकते। स्वयं निर्धन थे, अधिकतर निर्धनों से ही उनकी मित्रता थी। परन्तु तप, साहस, दृढ़ता, परिश्रम उनमें इतना था कि उनके समकालीन व्यक्ति उनकी बराबरी नहीं कर सकते थे। यही गुण उनका सहारा था, यही उनकी आशा थी और जिस प्रकार अपना निश्चय पूरा करने के लिए प्राचीन काल में बुद्ध निकल पड़े थे, मदनमोहन मालवीय भी अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने घर से बाहर निकल पड़े थे।

जब वे पहले पहल इस महान काय के लिए भीख माँगने निकले, तब अनेक लोग उनके साहस पर हँसे। उन्होंने कहा शरीर इनका बौने का-सा है, आशाएँ आसमान चूमती हैं। परन्तु मालवीयजी अपने निश्चय से न डिगे। अपने आचरण से उन्होंने शीघ्र प्रमाणित कर दिया कि उनका जीवन ऋषियों का-सा पवित्र है और जब अपने कार्य के लिए उनकी वाणी खुल पड़ती थी, तो जान पड़ता था कि सरस्वती मूर्तिमान होकर उमड़ चली हैं। भारत के राजा, साहूकार अपनी सभ्यता के इस मूर्तिमान आचार्य को देखकर फूले न समाये। उन्होंने उदारता से अपनी थैलियाँ खोल दीं और धन इस धर्म के कार्य में पानी-सा बह चला।

उन्हें विश्वास था कि धन धर्म के काम में लगा है और उसकी रक्षा एक ऐसा महर्षि कर रहा है जिसने वासना को जीत लिया है, जो वीतराग है। उसे दिया

हुआ धन रामबाण की भाँति अमोघ है और लक्ष्य पर अचूक बैठेगा, अज्ञान रूपी अंधकार को बेधकर नष्ट कर देगा। उनका यह विश्वास सही उतरा। सन १९१६ ई० में राजाओं और नेताओं के सामने जिस विश्वविद्यालय की नींव उस काल के भारत के लाट लार्ड हार्डिंग ने डाली, उसने देश में विद्या का कितना प्रचार किया है, यह देश का बच्चा-बच्चा जानता है।

करोडों रुपये भारतवर्ष के घरों से, झोंपडों से, महलों से, रनिवास से माँगकर इस महात्मा ने विद्या के इस विशाल भवन का निर्माण किया। परंतु उस महापुरुष का जीवन हिन्दू-विश्वविद्यालय की देख-रेख तक ही सीमित न रहा। भारत की आज़ादी की लड़ाई के हर मोर्चे पर यह वीरवर डटा रहा। स्वतंत्रता के महाभारत का यह भीष्म जीवन भर लड़ता रहा और उसमें अपना सर्वस्व स्वाहा कर अमर हो गया।

अनेक बार महात्मा गांधी के बायें-दायें रहकर वह तपस्वी जेल गया, अनेक बार उसने शत्रु के अत्याचार का सामना किया, पर हिला नहीं। कई बार वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति हुए, कई बार उन्होंने अपनी सूझ और सलाह से भारत का नेतृत्व किया। उनकी पवित्रता से प्रभावित होकर ही गांधी सा महात्मा उनके चरण छूता था।

पंडित मदन मोहन मालवीय वाणी से जितने प्रगल्भ थे, हृदय से उतने ही उदार थे। हृदय की इस उदारता

क कारण ही आप महामना कहलाते थे। उच्च कोटि के वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने कभी मनुष्य-मनुष्य में भेद न डाला और दशाश्वमेध घाट पर, काशी की पुण्य भूमि पर, विश्वनाथ के नेत्रों के सामने ही अछूतों को अपने मुख से मंत्र दान दिया। अंत में नोआखाली-रक्तपात ने उनके प्राणों को झकझोर किया और भारत के आकाश में प्रायः पचास वर्षों तक अपना प्रकाश फैला कर यह नक्षत्र अस्त हो गया।

पाठ ५

त्याग

नाटक के मुख्य पात्रः—

भोज——उज्जैन का राजा

वत्सराज——उज्जैन का मन्त्री

मुंज——भोज की ओर से राज्य का प्रबन्धक

प्रथम दृश्य

[स्थान—उज्जैन का राज-भवन । समय—रात्रि का पहला पहर। उज्जैन के राज-प्रतिनिधि महाराज मुंज महल के निर्जन भाग में चिन्ताग्रस्त हैं।]

मुंज—(स्वगत)—भोज मेरे मार्ग का कण्टक है। मैं उसे हटा कर ही छोड़ूंगा। जब वह संसार में रहेगा ही नहीं, तब मुझे फिर क्यों चिन्ता करनी पड़ेगी। चिरकाल तक उज्जैन के राज्य-सिंहासन पर मेरा अधिकार बना रहेगा।

(वत्सराज का प्रवेश)

वत्सराज—महाराज की जय हो।

मुंज—आओ, बैठो वत्सराज! मैं तुम्हारी बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा था।

(वत्सराज उचित स्थान पर बैठता है)

वत्सराज—आदेश दीजिये, महाराज!

मुंज—वत्सराज, मैं अपने मन्त्रियों में तुम पर सबसे अधिक विश्वास करता हूँ।

वत्सराज—महाराज, यह मेरा अपना परम सौभाग्य है।

मुंज—तो आज भी मैं अपने हृदय की बात को तुम से न छिपाऊँगा, वत्सराज! मेरी अभिलाषाओं की पूर्ति में तुम मेरी सहायता करो।

वत्सराज—यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज? ऐसा कौन सेवक होगा, जो अपने स्वामी की इच्छाओं की पूर्ति में प्राणपण से प्रयत्न न करेगा?

मुंज—तो सुनो, वत्सराज! तुम इस सघन अन्धकार में भोज को वन में ले जाओ और उसके प्राणों का सर्वनाश करके मेरे हृदय की अशान्ति दूर करो।

वत्सराज– ((आश्चर्य चकित होकर) भोज को वन में ले जाऊँ और उसके प्राणों का सर्वनाश करूं? वह अबोध बालक है। बेचारा आपकी गोद में पल रहा है। उसकी हत्या के लिए ऐसा कठोर आदेश न दीजिये, महाराज!

मुंज–वह मेरे मार्ग का कण्टक है मन्त्री! यदि वह जीवित रहा तो एक न एक दिन अवश्य मुझे उज्जैन के सिंहासन से अलग होना पड़ेगा।

वत्सराज–समझ गया महाराज, सब समझ गया। आप निरपराध और अबोध बालक का गला घोंटकर उज्जैन के राज्य-सिंहासन पर निष्कण्टक राज्य करना चाहते हैं, किन्तु यह मुझसे न होगा। मैं निरपराध बालक के रक्त से अपने हाथों को कलङ्कित न करूंगा।

मुंज–वत्सराज! क्या यही तुम्हारी स्वामि-भक्ति है?

वत्सराज–नहीं महाराज, वत्सराज स्वामि-भक्ति के मार्ग से विलग नहीं हो सकता। किन्तु, वह अपने स्वामी को पाप-पथ पर अग्रसर होने का दूषित मत कदापि नहीं दे सकता।

मुंज–जाओ, मैं राजपद से तुम्हें आदेश देता हूँ। भोज को वन में ले जाकर उसका सिर काट डालो। मैं उसे मिटाकर शान्त होऊँगा।

वत्सराज–(कुछ सोचकर) अच्छा महाराज, मैं आपको प्रसन्नता के लिए बालक भोज की हत्या करूँगा। आपको शान्ति और सान्त्वना दूँगा। (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

[स्थान–वन का सघन भाग । समय–अर्द्धरात्रि । वत्सराज और भोज।]

भोज–तुम मुझे इस अंधेरी रात में कहाँ लिए जा रहे हो, मन्त्री ?

वत्सराज–न पूछो भोज ! चुपचाप मेरे साथ चले चलो।

भोज–क्या कह रहे हो, मन्त्री ? देखो, पत्थर की ठोकर से मेरे अंगूठे से रक्त बह रहा है। तुम्हें तनिक भी दया नहीं आ रही है। आज तुम्हें हो क्या गया है ?

वत्सराज–आज मैं मनुष्य से राक्षस बन गया हूँ, भोज ! न हृदय में करुणा है, न ममता। प्राण वज्र से भी अधिक कठोर हो गये हैं।

भोज–यह तुम क्या कह रहे हो वत्सराज, आज तुम्हारा माथा तो नहीं फिर गया ?

वत्सराज–हाँ, आज मैं सचमुच पागल हो गया हूँ। यदि पागल न हो गया होता तो स्वार्थी मुंज की बात मानकर तुम्हारी हत्या करने के लिए तैयार न होता।

भोज--तो क्या तुम मेरी हत्या करने के लिए मुझे यहाँ लाये हो ?

वत्सराज--हाँ भोज, राज्य-लोलुप मुंज तुम्हारे जीवन को मिटा कर उज्जैन पर निष्कण्टक राज्य करना चाहता है।

भोज--वत्सराज, महाराज मुंज उज्जैन के अधिपति हैं। उन्हें तुम स्वार्थी कहकर राज-सिंहासन का अपमान न करो। उन्होंने जो आदेश दिया है उसका तुम्हें निःसङ्कोच पालन करना चाहिये।

वत्सराज--तुम विचित्र बालक हो, मृत्यु का नाम सुनने पर भी तुम्हें भय की सिहरन नहीं हुई।

भोज--भय की सिहरन क्यों उत्पन्न हों ? मनुष्य को मृत्यु का भय ? एक न एक दिन मरना ही है तो फिर आज मरे वा कल, भय क्यों ?

वत्सराज--भोज, तुम्हारे त्याग को देखकर मुझ में शक्ति नहीं कि मैं तुम्हारे ऊपर अस्त्र चलाऊँ।

भोज--नहीं वत्सराज, तुम भूल रहे हो। सेवक का काम है, स्वामी के आदेशों को मानना ?

वत्सराज--नहीं भोज, तुम देवता हो। आज तक किसी मनुष्य को मैंने इतना लोभहीन नहीं देखा है। भोज, मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हें इस अन्धकार-पूर्ण रात में वन में लाकर व्यर्थ कष्ट दिया।

61|86/V

भोज—तुम सदैव क्षमा के योग्य हो, वत्सराज, मेरे ही सामने नहीं, न्याय-प्रिय ईश्वर के सामने भी। तुम्हारा अपराध ही क्या है? तुमने जो कुछ किया है, केवल स्वामी की आज्ञा के वशीभूत होकर।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[स्थान— उज्जैन का राज-भवन। समय – रात्रि का आन्तिम प्रहर। मुंज पलंग पर चिन्तामग्न बैठा है।]

मुंज—(स्वगत) अभी तक वत्सराज नहीं लौटा। कहीं उसने विश्वासघात तो नहीं किया? किन्तु, विश्वास-घात करके जायगा कहाँ? पाताल से भी उसे खोज निकालूँगा और सकुटुम्ब शूली पर चढ़ा कर साँस लूँगा।

(गुप्तद्वार से वत्सराज का प्रवेश)

मुंज— (वत्सराज को देख कर) तुम आ गये? कहो मेरे मार्ग के कण्टक को सदा के लिए संसार से मिटाया कि नहीं?

वत्सराज—हाँ महाराज, वह तो कई घण्टे पहले ही इस संसार से बिदा हो चुका।

मुंज—इस संसार से विदा हो चुका? इसका प्रमाण?

वत्सराज–प्रमाण ! प्रमाण यही है महाराज कि मेरे वस्त्रों पर टटके रक्त के चिह्न हैं ?

मुंज-- (रक्त देख कर) तुम धन्य हो वत्सराज! तुमने भोज को मार कर मेरी चिन्ता सदा के लिए दूर कर दी। किन्तु, यह तो बताओ कि मृत्यु के पूर्व उसने तुमसे कुछ कहा था या नहीं ?

वत्सराज–वह मेरी तलवार देख कर हँसने लगा महाराज! उसने कहा, वत्सराज, तुम मुझे धोखा देकर इस वन में क्यों ले आये ? तुम मुझे वहीं राज-भवन में ही मार डालते या विष पिला देते। न पिलाते, मुझे दे देते। मैं स्वयं अपने हाथों पी जाता। महाराज ने राज्य-वैभव के लिए मेरे वध का तुम्हें आदेश दिया। महाराज को मुझ से कहना चाहिये था। मैं सदा के लिए उन्हें राज्य का अधिकार-पत्र लिख देता।

मुंज–अद्‌भुत बालक था वत्सराज ! वह अपनी मृत्यु का समाचार सुन तनिक भी भयभीत नहीं हुआ ?

वत्सराज–नहीं महाराज, वह तो हँसता था। कहता था मृत्यु मेरे लिए क्या है ? मैं तो मृत्यु को शान्ति की गोद समझता हूँ।

मुंज–वत्सराज, तुम्हारी बातें सुन कर मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। ओह, मैं स्वार्थ से अन्धा हो गया। मैंने भोज के हृदय में छिपी हुई ज्योति को न पहचाना।

वत्सराज–अब पश्चात्ताप करने से क्या लाभ, महाराज ? भोज चाहे जो था; किन्तु अब तो वह सदा के लिए संसार से मिट चुका।

मुंज–नहीं वत्सराज, भोज कभी संसार से नहीं मिट सकता। वह देवता है । प्रलयकाल तक जीवित रहेगा। क्या मेरे भोज को ला कर तुम मुझे दिखा सकते हो ?

वत्सराज–हाँ महाराज, भोज जीवित है। मैं आप के परिवर्तनशील स्वभाव से परिचित था। इसलिए मैंने भोज की हत्या नहीं की।

(भोज का प्रवेश)

मुंज–(भोज को देख कर) बेटा भोज, आ मेरी जलती हुई छाती को शीतल कर। आह! आज मेरा हृदय अपने पापों से जला जा रहा है।

(भोज को अपनी गोद में उठा लेता है)

भोज–महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं ?

मुंज–भोज, आज तुम्हें पहचान कर मैं धन्य हो गया। लो उज्जैन के इस राजमुकुट को अपने मस्तक पर धारण करो। यह तुम्हारा है, और इसे तुम्हारे ही सिर पर रहना चाहिए।

पाठ ६

काशी

काशी बड़ी प्राचीन नगरी है। इतिहास से भी पता नहीं चलता कि यह कितनी प्राचीन है। प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें जो मिलती हैं उनमें भी काशी का नाम आया है। गंगा नदी के बायें किनारे पर यह नगर बसा है। गंगा यहीं से उत्तर की ओर मुड़ी है। इस से इस नगर का महत्व बढ़ गया है। गंगा यहाँ धनुषाकार अथवा अर्द्धचंद्राकार बहती है।

इस संबंध में बहुत-सी कहानियाँ हैं कि काशी किसने बसाई। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि इस नगर का निर्माण देवताओं के निवास के लिए देवताओं ने किया है। संसार से इसी लिए इसे पृथक मानते हैं। इसके नाम के संबंध में भी अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वरुणा नदी तथा अस्सी नदी के संगम पर बसा है, इसलिए इसका नाम वाराणसी पड़ा और उसी का अपभ्रंश है बनारस। कुछ लोगों का कहना है कि क्षत्रिय राजा 'बनार' ने इसे बसाया, इसलिए इसका नाम बनारस पड़ा। काशी के लिए भी ऐसी ही कहानियाँ हैं।

जो भी हो, इसकी प्राचीनता में संदेह नहीं है। इसमें भी संदेह नहीं है कि पुरातन काल से इसका महत्व

रहा है। यह धर्म केंद्र रहा है तथा सारे भारत के इतिहास में इसका अपना एक स्थान रहा है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र यहाँ बिकने के लिए आये थे; महाभारत के संग्राम में काशीराज लड़ने गये थे; और गौतम बुद्ध ने अपने धर्म की दीक्षा पहले-पहल यहीं अपने पाँच शिष्यों को दी थी। हिंदू-धर्म के बहुत बड़े दार्शनिक श्री स्वामी शंकराचार्य ने यहीं से गिरते हुए हिंदू-धर्म की ध्वजा को फिर उठाकर फहराया।

तुलसीदास ने यहीं बैठकर संसार के महान् ग्रन्थ रामचरितमानस का अधिकांश भाग लिखा। और भी कितने ही महापुरुष यहीं आकर बसे या उन्होंने यहाँ से बराबर सम्पर्क बनाये रखा। सच पूछिए तो विरले ही हिन्दी या हिन्दू-धर्म की कोई ऐसी बात होगी जिसका काशी या बनारस से संबन्ध न हो।

परन्तु यह नहीं कह सकते कि यह नगर किसी विशेष धर्म या जाति का है। सच पूछिए तो यह सार्वजनिक नगर है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी पर्याप्त संख्या में यहाँ निवास करते हैं। इतना ही नहीं, भारत के सभी धर्म और जातियाँ यहाँ इस प्रकार से बस गई हैं कि इन लोगों के एक-एक मुहल्ले अलग-अलग बन गये हैं। बंगालियों, मद्रासियों, महाराष्ट्रियों, सिक्खों, खत्रियों, अग्रवालों सभी के अलग-अलग मुहल्ले हैं और ब्राह्मण, कायस्थ, क्षत्रिय, वैश्य, हरिजन चारों ओर फैले हुए हैं। बौद्ध लोगों ने सारनाथ में अलग अपने घर बना लिये हैं और मुसलमानों के भी कई स्थान हैं।

बहुत पुराने समय से यह शिक्षा का केन्द्र रहा है। संस्कृत-शिक्षा का इतना बड़ा केन्द्र संसार भर में कहीं नहीं है। प्रत्येक पंडित का घर एक पाठशाला है जहाँ भारत के कोने-कोने से विद्यार्थी आते हैं और निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते हैं। कुछ ऐसे भी स्थान ह जहाँ विद्यार्थियों को भोजन मिलता है। अंगरेज़ी ढंग के स्कूलों की भी कमी नहीं है। कितने ही कालेज तथा हाईस्कूल यहाँ सारे नगर में फैले हैं।

और सबसे महान् महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के परिश्रम और प्रयत्नों का फल काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय यहीं है। यह मीलों के घेरे में बना है जहाँ सहस्रों बालक-बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। यहाँ विज्ञान, कला, इंजीनियरिंग आदि की पढ़ाई होती है।

यह व्यापारिक नगर भी है। यहाँ की बनी बनारसी साड़ियाँ भारत के सब नगरों में ही नहीं, यूरोप तथा अमेरिका भी जाती हैं। ये रेशम की बनी होती हैं, जिनपर सुनहले तारों की बूटियाँ होती हैं। काठ के खिलौने और पीतल के बरतन भी यहाँ की विशेषताएँ हैं।

लाखों यात्री यहाँ प्रत्येक वर्ष किसी न किसी पर्व पर आते हैं, गंगा में डुबकी लगाते हैं और कुछ न कुछ यहाँ से लेकर घर लौटते हैं। बहुत-से लोग बुढ़ापे में आ कर यहीं बस जाते हैं। लोगों का ऐसा विचार है कि काशी में मरने से ही सीधे स्वर्ग मिलता है।

साँड़ों और भिखमंगों की भी यहाँ बहुतायत है। जिधर देखिए ये विचरते मिलेंगे। नगर बहुत कुछ पुराने ढंग का है। एक भाग ऐसा है जहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ हैं और पतली-पतली संकीर्ण गलियाँ। यहाँ एक दूसरे से सटे पत्थर के ऊँचे-ऊँचे घर बने हैं। ये इतने निकट हैं और इतने ऊँचे कि नीचे के खंडों में प्रकाश का पहुँचना कठिन है। पुराने तथा नये बहुत-से भवन भी दर्शनीय हैं, जैसे विश्वनाथजी का मन्दिर जिसके ऊपर का कलश सोने से मढ़ा है, क्वींस कालेज का भव्य-भवन, विश्वविद्यालय और बिंदुमाधव का धौरहरा। घाट तो यहाँ के प्राण हैं। सबेरे उनकी छटा बड़ी मन-लुभावनी होती है।

पाठ ७

वैज्ञानिक उन्नति

अन्वेषण की ओर मनुष्य की बुद्धि सदा लगी है और वह कुछ न कुछ करता ही रहता है। वास्तविक वैज्ञानिक जागृति के लक्षण सत्रहवीं शताब्दी में प्रकट हुए हैं। तब से उत्तरोत्तर विज्ञान के चमत्कार बढ़ते ही गये हैं। जब विज्ञान की ओर यह प्रवृत्ति बढ़ी थी, तब वैज्ञानिक युग का शैशव काल था। आरंभिक आविष्कारों से अगर कोई आज के रेडियो और टेलीविज़न की बात चलाता तो वे उसे पागल समझते। आज वही सब कुछ संभव

हो गया है और मनुष्य के उपयोग में आ रहा है। पर निश्चय ही आज का वैज्ञानिक युग और आज के विचित्र-विचित्र आविष्कार, उस प्राचीन युग के और उन छोटे-मोटे आविष्कारों के ऋणी हैं, जिन्हें आज हम बच्चों का खेल समझते हैं।

यदि हम बीसवीं सदी की समस्त वैज्ञानिक उन्नति का सिंहावलोकन करें और उसे संक्षेप में व्यक्त करना चाहें तो हम पिछले तैंतीस साल के समस्त आविष्कारों को दो भागों में विभक्त कर लेंगे। एक तो वे हैं जिन्हें आविष्कार न कहकर आविष्कारों का संशोधन या परिवर्धन कहना उचित होगा। इनके अन्तर्गत वर्तमान मोटर, पनडुब्बी जहाज़, जेपलिन और राइट के वायुयान, तार और टेलीफोन, ग्रामोफोन आदि मुख्य हैं। दूसरी श्रेणी के विशुद्ध आविष्कारों में बेतार का तार, रेडियो, सिनेमा और टेलीविज़न आदि हैं।

भौतिक शक्तियों का थोड़ा बहुत परिचय तो प्राचीन काल से ही मनुष्य को था, पर वैज्ञानिक युग से पहलेपहल उसने उनसे काम लेना शुरू नहीं किया था। मनुष्य की अपनी शक्ति बहुत थोड़ी है। केवल अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा वह कुछ भी कर सकने में समर्थ न होता। जब से उसने भौतिक शक्तियों को वश में करने में सफलता प्राप्त की है, तभी से नित्य नये आविष्कार संभव हो रहे हैं। ये भौतिक शक्तियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं—बाष्प, गैस, विद्युत और ईथर। समस्त वैज्ञानिक उन्नति

का आधार ये ही चार शक्तियाँ हैं। इन्हीं से कल-कारखाने, रेल, जलयान, मोटर, वायुयान, टेलीग्राम, टेलीफोन, रेडियो और टेलीविशन आदि का अस्तित्व है। इन्हीं के द्वारा दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक शब्द को पहुँचाया जा सकता है। वास्तव में ये दैवी वरदान हैं, और इन्हें पाकर मनुष्य जल, थल, और आकाश का स्वामी बन बैठा है।

यदि देखा जाय तो इस वैज्ञानिक उन्नति के सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही हुए हैं। सदुपयोग के फल-स्वरूप अनेक लाभ हुए हैं। आज हम घर के भीतर बैठे-बैठे दुनियाँ की हलचलों का ज्ञान सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन काल में एक रावण के पास पुष्पकविमान था, आज सर्वसाधारण के लिए हवाई जहाज़ तैयार रहते हैं। आज वायु-वेग से चलनेवाली जलतरणियाँ सबकी सेवा को प्रस्तुत हैं। आज हम इच्छा करते ही सहस्रों कोस की दूरी पर स्थित अपने आत्मीयजनों से बातचीत कर सकते हैं। आज आकाश-पाताल सभी वश में हैं।

दुरुपयोगों का विचार करें तो इनसे पर्याप्त क्षति हुई है, हो रही है और होने की संभावना है। बेचारे एडिसन का टेलीग्राफ के आविष्कार के समय संसार का हित-साधन ही ध्येय रहा होगा, इसी प्रकार स्टीफेनसन का लक्ष्य भी बाष्पयंत्र बनाते समय संसार का कल्याण ही रहा होगा। आविष्कारकों को कदाचित् ही इस बात का ध्यान रहा हो कि उनके आविष्कार मानवजाति के

नाश में भी प्रयुक्त किए जायेंगे। रेलों, जहाज़ों और हवाई जहाज़ों के द्वारा सेना और अस्त्र-शस्त्र सहज ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जा सकेंगे। प्रेस, टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियोफोन आदि शत्रु जातियों के प्रति विषैला वातावरण तैयार करने में काम आवेंगे। यदि वे यह सब जानते तो कदापि अनेकानेक कष्ट और असुविधाएँ सहन कर इन आविष्कारों में अपने अमूल्य जीवन का उत्सर्ग न करते।

पिछले दिनों की वैज्ञानिक उन्नति की गति देख कर तो यही अनुमान होता है कि निकट भविष्य में मनुष्य को परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। बिजली उसके लिए समस्त कार्य कर दिया करेगी। खाना बनाना, नहलाना-धुलाना, कपड़े साफ करना, मकान की सफाई करना, जल गरम करना, मोटर चलाना, सब कुछ बिजली के ही द्वारा संभव हो जायगा। लेकिन एक जीवन-मरण की पहेली को अभी तक कोई हल नहीं कर सका। विज्ञान का ध्यान तो इस ओर भी है, पर अभी तक अन्धकार में ही टटोलना पड़ रहा है। यदि इस ओर प्रकाश की एक किरण भी मिल गई तो एक महान क्रान्ति फिर होगी, पर उसका अभी कोई निश्चय नहीं है। अभी तो संसार की आँखें वर्तमान उन्नति के प्रभाव की ओर लगी हुई हैं।

———

पाठ ८

प्रथम दर्शन

गाँधी जी को पहले पहल देख कर मेरे ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। चंपारन के उपद्रव में उनके कार्यों का परिचय थोड़ा बहुत मिल चुका था। इसी संबंध में वे मोतिहारी पहुँच चुके थे। मैं भी अपने मित्र बाबू ब्रजकिशोर के अनुरोध से वहाँ पहुँच गया था। गाँधी जी वहाँ जाना चाहते थे जहाँ गोरों ने अत्याचार मचा रखा था और उनके नोच-खसोट के चिह्न भी जहाँ थे। गाँधी जी को कलक्टर का आदेश मिल चुका था कि वे जिले के बाहर हो जायँ। पर क्या यह संभव था? वे आज्ञाभंग के मुकद्दमे की प्रतीक्षा करने लगे। मैं अपने अन्य मित्रों के साथ तीसरे पहर के तीन बजे के करीब जब पहुँचा तब मामला अदालत में पेश हो चुका था और सुनवाई के बाद तीन-चार दिनों के लिए स्थगित हो गया था।

जब बाबू गोरखप्रसाद के घर गया तब मैं ने देखा—गाँधी जी एक साधारण गाढ़े का कुरता पहने कुछ लोगों के बीच बैठे थे। मेरा पहले का उनसे कोई परिचय नहीं था। बाबू साहब ने जब मेरा परिचय कराया तब मुझसे हँसते हुए उन्होंने कहा—

"आप आ गये? आपके घर पर तो मैं हो आया।

गाँधी जी के मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर जाने, नौकर के अशिष्ट व्यवहार करने और उनके लौट जाने की कहानी तो मैं पहले ही सुन चुका था; इसलिए कुछ लज्जित हुआ और बोला–"जी, क्षमा कीजिए। मैं इसके लिए बड़ा लज्जित हूँ।"

"इसमें लज्जा की क्या बात है? घृणा, शंका, भय, लज्जा ये सब तो मनुष्य को बाँधने वाले पाश हैं। इन्हें तो तोड़ना ही होगा।"

मैं चुप था। निर्निमेष उनकी ओर देख रहा था।

कितने दिनों से वकालत करते हैं? उन्हों ने अनायास पूछा।

"थोड़े ही दिनों से।"–मैंने कहा।

"मैंने आपकी बड़ाई सुनी है। मैं आप पर भरोसा करके ही यहाँ आया हूँ। क्या आप मेरे साथ जेल जाने को प्रस्तुत हैं?" और वे जोर से हँस दिये। प्रत्युत्तर की आशा किये बिना ही उन्होंने वे सब बातें मुझे बतला दीं जो अदालत में हुई थीं। सपने में भी मैंने यह नहीं सोचा था कि इन महात्मा के पास पहुँचते ही प्रसाद-स्वरुप मेरी भी जेल जाने की नौबत आ जायगी। यह प्रश्न एक जटिल समस्या बनकर मेरे माथे में चर्खी की तरह चक्कर लगा रहा था।

अनजान किसानों के लिए यहाँ यह मनुष्य–जो अभी दक्षिण अफ्रिका से इतना काम करके लौट आया है–

कष्ट सहने और समय पड़ने पर जेल भी जाने को तैयार है। ऐसी दशा में मेरा घर वापस चले जाना भी क्या उचित है? बाल-बच्चों का भी तो ध्यान है। कोई सन्यासी थोड़े ही हैं। इस प्रश्न ने मेरे लिए साँप-छछुंदर की गति पैदा कर दी।

मेरा हृदय धड़क रहा था। मेरे सामने वह दृश्य उपस्थित हो गया, जब मैं पहले पहल माननीय गोखले से मिला था। उन्होंने थोड़े ही दिन पहले 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी' की स्थापना की थी। उनकी अभिलाषा थी कि देश के कुछ चुने हुए नवयुवक देश-सेवा करने के हेतु उसमें सम्मिलित हों। उन्होंने हाईकोर्ट में महेश्वरलाल बैरिस्टर द्वारा सन्देश कहला कर मुझे बुलवाया भी था। मैं इससे आश्चर्यित और प्रभावित भी था क्योंकि मुझे पहले कभी माननीय गोखले के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

गोखले जी ने कहा—"हो सकता है, तुम्हारी वकालत खूब चले। खूब रुपये कमाओ। मौज से जीवन-व्यतीत हो। हाथी, घोड़ा, आलीशान कोठी, नौकर-चाकर और दिखावटी सामान जो धनी आदमियों के हुआ करते हैं तुम्हें प्रस्तुत हों। पर नौजवानों का देश के प्रति भी कुछ कर्तव्य है, देश उनसे भी कुछ चाहता है और जब तुम पढ़ने में अच्छे हो, होनहार हो, तुम्हारे लिए यह कर्तव्य और अधिक हो जाता है।

फिर कुछ ठहरकर वे अपने विषय में कहने लगे—"एक समय था जब मेरे सामने भी यही प्रश्न उपस्थित था। घर के लोग इस आशा में थे कि जब मैं कमाऊँगा लोग सुखी होंगे, क्योंकि मैं गरीब घर का आदमी था। किंतु मैंने देश-सेवा का व्रत लिया। घरवाले तो इतने असंतुष्ट हुए कि कुछ दिनों तक तो मुझसे संभाषण भी त्याग दिया। पर क्या करता, लगन दूसरी थी और मैं लाचार था। कुछ दिनों बाद जब वे सब समझ गये, मुझसे खूब प्रेम करने लगे। संभव है यही दशा तुम्हारी भी हो। पर यह विश्वास रखो कि अंत में सब तुम्हें पूजेंगे। फिर कौन जानता है, यदि तुम्हारी मृत्यु हो गयी तब उसे तो सहन कर ही लेंगे।"

और इस प्रकार अपने अंतिम वाक्य द्वारा उन्होंने मेरे हृदय को इस तरह कंपा दिया जैसे तानपूरे का तार छू लेने से काँप उठता है।

मुझपर उनकी बातों का बड़ा प्रभाव हुआ। वे पुनः बोले—"ठीक। इसी समय उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। अच्छी तरह विचार करके मुझसे एक दिन फिर मिलो। तब अपनी पक्की सम्मति देना।"

ठीक यही परिस्थिति आज मेरी गाँधी जी के सामने हुई।

बाबू रामनौमी जो वहीं बैठे थे मुझसे कहने लगे—"गाँधी जी ने रात भर जागकर वायसराय तथा

नेताओं के पास भेजने के लिए पत्र लिखे हैं और रात में ही अदालत में देने का अपना बयान भी तैयार कर लिया है। मुझसे भी पूछते थे कि मेरे कैद हो जाने के बाद आप क्या करेंगे ?`

"तब आपने क्या कहा ?` —मैं ने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया। रामनौमी बोले—"मैंने कह दिया कि हम लोग अपने-अपने घर चले जायेंगे।`

"तब ! —मैंने प्रश्न किया।

"और इस काम को यों ही छोड़ देंगे ? —तब गाँधी जी ने गम्भीर होकर पूछा।

इस पर धरनीधर बाबू ने कुछ सोचकर उत्तर दिया— "हम जाँच का काम जारी रखेंगे, और जब हम पर भी सरकार की ओर से नोटिस हो जायगी तब दूसरे वकील जाँच का काम जारी रखेंगे। उनको भी यदि जेल जाना पड़ा तो उनके पीछे तीसरी टोली उस काम को अपने हाथ में लेगी।`

यह सुन कर गाँधी जी को संतोष तो हुआ पर पूरा नहीं। रात भर सोच-विचार करने के बाद जब दूसरे दिन हम लोग गाँधी जी के साथ कचहरी जा रहे थे, तब हमारे साथ कुछ दूसरी भावनाएँ थीं, दूसरी उमंगें थीं। जब गाँधी जी ने हम लोगों से यह सुना कि आपके जेल जाने के बाद आवश्यकता पड़ने पर हम लोग भी जेल जाने को प्रस्तुत हैं तब उनका चेहरा खिल उठा और वे बहुत प्रसन्न हुए।

जिस दिन गाँधी जी पर मुकदमा चला, वे अदालत में उपस्थित थे। हम लोग भी साथ थे। सहस्रों की संख्या में ग्रामीण जनता अपने 'उद्धारक' के दर्शन के लिए उपस्थित थी। लोगों का उत्साह और उमंग दर्शनीय थी। भीड़ इतनी अधिक इकट्ठी हो गयी थी कि अदालत के द्वार तक टूट गये। अदालत में गाँधी जी ने बयान दे दिया। मुकदमा समाप्त हो गया। तीन-चार दिनों के बाद उनकी रिहाई भी हो गयी और उन्हें निलहे गोरों के अत्याचार के विरुद्ध जाँच करने की आज्ञा मिल गयी।

पाठ ६

अस्पताल

अंग्रेजी भाषा का एक शब्द है–'हास्पिटल'। यही शब्द बिगड़कर 'अस्पताल' बना है। हमारी भाषा में जैसे अंग्रेजी के और बहुत से शब्द प्रचलित हो गये हैं वैसे ही यह भी प्रचलित हो गया है। अस्पताल शब्द का अर्थ है 'चिकित्सालय'।

आजकल लगभग सभी नगरों और कस्बों में अस्पताल खुल गये हैं। इन अस्पतालों का प्रबन्ध प्रायः राज्य की ओर से ही होता है और सरकार ही इनका व्यय-भार

उठाती है। इन अस्पतालों में रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। कुछ शहरों में जनता की ओर से भी अस्पताल खोले गये हैं। इनका व्यय जनता के चन्दे से चलता है। हमारे देश में ईसाई मिशनरियों, धर्म-प्रचारकों ने भी अनेक अस्पताल खोल रखे हैं।

जनता की भलाई के लिए आजकल जितनी भी संस्थाएँ खुली हैं, उनमें अस्पताल सबसे अधिक लाभप्रद हैं। प्राचीन काल में वैद्य और हकीम लोग अपने घरों पर ही निर्धनों की मुफ़्त चिकित्सा किया करते थे। परन्तु आजकल जनता को अस्पतालों में जैसी सुविधाएँ प्राप्त हैं पहले कभी नहीं थीं।

रोगियों की चिकित्सा के लिए अस्पतालों में बड़े-बड़े शिक्षित डाक्टर नियुक्त रहते हैं। चीर-फाड़ और जर्राही के अच्छे से अच्छे औजारों का प्रबन्ध भी रहता है और उत्तमोत्तम औषधियाँ भी यहाँ मिल जाती हैं। वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा पाये हुए कंपाउंडर और नर्स भी इन अस्पतालों में नियुक्त रहती हैं। कुछ अस्पताल चौबीसों घण्टे खुले रहते हैं और कुछ केवल दिन में ही नियत समय पर खुलते हैं।

अस्पतालों में अमीरों और गरीबों के साथ समान व्यवहार किया जाता है और धनी-निर्धन में कोई अन्तर नहीं रखा जाता । नर्स और डाक्टर सबसे बहुत शिष्टता पूर्वक मिलते और सबको बहुत ध्यानपूर्वक देखते हैं। अस्पतालों में रोगों की परीक्षा की जाती है और औषधि

भी निःशुल्क वितरित की जाती है। हाँ, शीशियाँ लोग अपनी ले आते हैं।

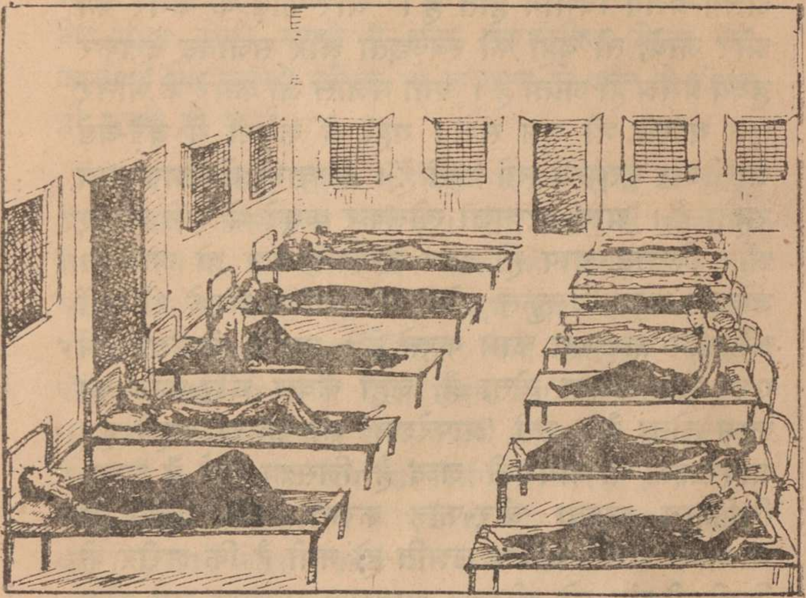

अचानक हो जानेवाली दुर्घटनाओं के लिए अस्पताल अत्युपयोगी सिद्ध हुए हैं। यदि कोई पेड़ पर से गिर जाता है, गाड़ी के नीचे आ जाता है अथवा लड़ाई-दंगे में किसी को चोट लग जाती है, तो तुरंत उसको अस्पताल पहुँचा दिया ज़ाता है। वहाँ उसके घावों की मरहम-पट्टी कर दी जाती है और उसकी दवा का उचित प्रबन्ध कर दिया जाता है।

बड़े-बड़े अस्पतालों का प्रबन्ध बड़े ही उत्तम ढंग से किया जाता है। वहाँ विभिन्न रोगों के रोगियों के लिए अलग-अलग विभाग होते हैं। चीर-फाड़ के कमरे की ओर जायें, तो वहाँ की स्वच्छता और सजावट देखकर हृदय प्रसन्न हो जाता है। क्या मजाल जो कमरे के भीतर एक मक्खी भी घुस सके। यहाँ के कमरों में बड़े-बड़े जालीदार दरवाज़े लगे रहते हैं। किवाड़ों में स्प्रिंग लगा रहता है। आप दरवाज़ा खोलकर कमरे में चले जाइए और किवाड़ आप ही आप तत्काल बन्द हो जायेंगे। डाक्टर लोग बिलकुल श्वेत वस्त्र धारण करके रोगियों की चीर-फाड़ का काम करते हैं। प्रत्येक अस्पताल में एक ऐसा कमरा होता है, जहाँ केवल चीर-फाड़ का काम होता है। उसे 'आपरेशन' का कमरा कहते हैं। आपरेशन भी अंगरेज़ी शब्द है जिसका अर्थ है शल्य-चिकित्सा अथवा चीर-फाड़ करना। इस विद्या में आजकल इतनी अधिक उन्नति हो गयी है कि शरीर के किसी भी अंग को चीरकर आवश्यकतानुसार उसे ठीक कर देना बायें हाथ का खेल हो गया है।

आजकल का सबसे आश्चर्यजनक यंत्र 'एक्सरे' है। इससे शरीर के भीतर के अवयवों का फोटो खींचा जाता है। 'एक्सरे' द्वारा फेफड़े के रोगों से पीड़ित रोगियों के फेफड़ों का फोटो लेकर सरलतापूर्वक बतलाया जा सकता है कि किस फेफड़े के किस भाग में क्या दोष है।

इन अस्पतालों में रोगियों के ठहरने के लिए भी बड़ा उत्तम प्रबंध रहता है। यदि रोगी निर्धन है, तो उसके भोजन इत्यादि का प्रबंध भी अस्पताल की ओर से ही किया जाता है। दिन-रात प्रत्येक समय रोगियों की देख-भाल होती रहती है और यथाशक्ति चेष्टा की जाती है कि उनको तनिक भी कष्ट न हो और वे शीघ्र ही अच्छे हो जायें।

बहुत बड़े-बड़े शहरों में अलग-अलग रोगों के लिए अलग-अलग अस्पताल होते हैं। जैसे आँख के रोगों के लिए आँख का अस्पताल और यक्ष्मा के रोगियों के लिए यक्ष्मा का अस्पताल होता है। इन अस्पतालों में इन रोगों के विशेषज्ञ डाक्टर नियुक्त किये जाते हैं। कस्बों के अस्पतालों में अभी ऐसा प्रबंध नहीं हो पाया है। वहाँ केवल एक डाक्टर और उसके साथ एक कंपाउंडर रहता है। वही सब रोगों की चिकित्सा करता है। जो लोग किसी घातक रोग के पंजे में फँस जाते हैं, उनको वह विशेषज्ञों के पास जाने की राय देता है।

हमारे प्रांत के कुछ भागों में 'गश्ती अस्पताल भी खोले गये हैं। जो डाक्टर इन अस्पतालों में काम करते हैं, वे भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में दौरा करते हुए वहाँ के रोगियों की चिकित्सा करते रहते हैं।

डाक्टरी का काम बड़ा अच्छा है। संसारमें आदमी के लिए इससे बढ़कर और क्या काम हो सकता है कि वह किसी दुखी का दुख दूर करे और किसी पीड़ित की

पीड़ा कम करे। रोते हुए को हँसा कर क्षण भर के लिए भी आराम पहुँचाने से बढ़कर पुण्य का और कौन-सा काम हो सकता है! सच है, परोपकार ही पुण्य है।

पाठ १०

एक महाराष्ट्र वीर

सोमवार का प्रभात-काल था। शिवाजी का डेरा रायगढ़ में था और माता जीजाबाई प्रतापगढ़ में थीं। माता प्रभात-काल में हाथी-दाँत के कंघे से बाल सँवार रही थीं कि खिड़की में से पहाड़ की चोटी पर चमकता हुआ सिंहगढ़ का मस्तक दिखाई दिया। मानिनी माता के दिल में एक बर्छी-सी चुभ गई। सिंहगढ़ मुगलों के हाथों में! क्या यह एक क्षत्राणी को सह्य हो सकता था? माता ने उसी दम एक दूत को रायगढ़ रवाना किया। रायगढ़ पहुँचकर दूत ने शिवा को सन्देश दिया कि माता ने आज्ञा दी है कि इसी समय चले आओ। आज्ञा-पालक पुत्र भोजन कर रहा था।

माता की आज्ञा सुनकर उसने मस्तक झुकाया। खाना बीच ही में छोड़ दिया, हाथ धोये, शस्त्रों से सज कर वह घोड़े पर सवार हो गया और वायु-वेग से प्रतापगढ़ के द्वार पर पहुँच गया। जीजाबाई प्रतीक्षा ही कर रही थीं। शिवाजी ने अन्दर घुसकर देखा कि पाँसों के खेल का सामान तैयार पड़ा है। आज्ञा हुई कि बाजी

लगाओ। विस्मित परन्तु नम्रहृदय से, बिना कोई प्रश्न पूछे, शिवाजी पाँसे फेंकने लगे। माता ने भवानी का ध्यान करके खेलना आरम्भ किया और शीघ्र ही शिवाजी को परास्त कर दिया। शिवाजी ने माता से कहा कि आप मेरा कोई भी किला माँग सकती हैं। जीजाबाई ने झट उत्तर दिया कि मुझे सिंहगढ़ चाहिए। शिवाजी अब समझे।

सिंहगढ़ को दुश्मन से लेना आसान नहीं था, उसका किलेदार उदयभानू पूरा दैत्य था। एक दिन में २ भेड़ें और २० सेर चावल का खा जाना उसके लिए साधारण बात थी। उदयभानु के १८ स्त्रियाँ थीं और १२ पुत्र थे, जो पिता से भी अधिक बलवान समझे जाते थे। किले में एक खूनी हाथी था जिसका नाम चन्द्रावलि था और एक लड़ाकू था जिसका नाम सीदीहिलाल था। इन दोनों को जीतनेवाला वीर मिलना कठिन था। ऐसे रावण द्वारा सुरक्षित किले को लेना लोहे के चने चबाने से भी अधिक था। परन्तु जैसे क्षत्राणी अपने आदेश को वापस नहीं ले सकती, वैसे ही क्षत्रिय भी वचन देकर झूठा नहीं बन सकता। शिवाजी ने सिंहगढ़ का किला जीतकर माता के चरणों में रखने की प्रतिज्ञा की।

प्रतिज्ञा तो कर ली, पर 'म्याऊं का ठौर कौन पकड़े? वीर सेनापति द्वारा सुरक्षित उस किले पर कौन आक्रमण करे? बहुत विचार के पीछे शिवाजी की अंगुली अपने बाल्य-सखा तानाजी मालसुरे पर पड़ी। तानाजी मालसुरे शिवाजी की सम्पत्ति और विपत्ति दोनों का साथी था। वह विख्यात पराक्रमी था। शिवाजी ने इस सन्देश के साथ तीव्रगामी दूत भेजा कि तानाजी मालसुरे तीन दिन के अन्दर १२ हज़ार सिपाहियों के साथ रायगढ़ में पहुँच जाय। जब दूत तानाजी के पास पहुँचा, तब वह अपने पुत्र रायबा के विवाह की तैयारी में लगा हुआ था। प्रभु

DHARMARAM COLLEGE LIBRARY BANGALORE
13601

की आज्ञा पहुँचते ही उत्सव-वाद्य बन्द करा दिया गया और तीन दिन पूरे होने के पूर्व १२ हज़ार सिपाहियों के साथ तानाजी रायगढ़ के द्वार पर आ पहुँचा।

शिवाजी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। ज्योंही उन्होंने मराठा सेना की ध्वजाएँ देखीं, त्योंही वह बाहर आकर तानाजी से गले लगकर मिले। तानाजी ने शिवाजी को उलाहना दिया कि तुमने मुझे पुत्र के विवाहोत्सव से क्यों बुलाया? शिवाजी ने उत्तर दिया कि तुम्हें मैंने नहीं, माताजी ने बुलाया है। माता जीज़ाबाई हाथ में दीपक लिये पहले से तैयार खड़ी थीं। उन्होंने तानाजी के सिर के चारों ओर दीपक की परिक्रमा करायी, माथा चूमा और जयमाला पहनाकर तिलक लगाया। विघ्नों के नाश के लिए जीजाबाई ने हाथ की अंगुलियाँ चटकाकर आशीर्वाद दिया। तानाजीने आशीर्वाद ग्रहण करते हुए जीजाबाई के सामने झुककर सिंहगढ़ को जीतने की प्रतिज्ञा की।

रात का अंधेरा होने के साथ ही मराठासेनाएँ सिंहगढ़ की तलैटियों में घूमने लगीं। तानाजी ने स्वयं देहाती का वेष धरकर दुर्ग की परिक्रमा की और जानने योग्य बातों का पता लगा लिया। रात के घोर अन्धकार में, जब कि सिंहगढ के रक्षक गहरी नींद में सो रहे थे, तानाजी चुने हुए सिपाहियों के साथ कल्याण-द्वार के नीचे पहुँच गया। किला एक ऊँची चोटी पर बना हुआ है। ऊपर चढ़ना दुष्कर था।

सन्दूकची में से शिवाजी के प्रसिद्ध घोरपड 'यशवन्त' को निकालकर तानाजी ने उसके माथे पर चन्दन लगाया, गले में माला पहनाई और कमर में कमन्द बाँधकर उसे ऊपर फेंका। ऊँचाई के अधिक होने से वह स्थान पर न पहुँच सका और वापस आ गया। तब तानाजी ने यह धमकी देते हुए कि यदि इस बार भी यशवन्त लौट आया तो इसे मारकर खा जाऊँगा, फिर उसे पूरे जोर से ऊपर फेंका। अबकी बार उसने चोटी पर अपने पंजे गाड़ दिये।

कमन्द के सहारे मराठा सिपाही धड़ाधड़ ऊपर चढ़ने लगे। चढ़नेवालों में सबसे पहला नंबर तानाजी का था। तलवार को दाँतों में थामकर और जान को हथेली पर लेकर वह वीर दुश्मन के दाँतों तक चढ़ गया। ५० सिपाही चोटी पर पहुँच चुके थे कि कमन्द बीच में से टूट गयी। ऊपर के सिपाही ऊपर और नीचे के सिपाही नीचे रह गये।

असली नेता वही है, जिसका दिमाग कठिनाई के समय शान्त रहे। तानाजी के एक ओर दुश्मनों से भरा हुआ दुर्ग था और दूसरी ओर भयानक खाई थी। विचार-शक्ति को कायम रखते हुए मराठा सेनापति ने किले पर दावा करने का ही निश्चय किया। दबे पाँव जाकर उन लोगों ने कल्याण-द्वार पर और अन्य दो द्वारों के बाहर जो सिपाही पहरा दे रहे थे, उन्हें मार गिराया।

उदयभानु उस समय शराब और अफीम के नशे में मस्त होकर अन्तःपुर में जा रहा था। उसे शत्रु के आने का समाचार मिला, तो उसने पहले चन्द्रावलि हाथी को और फिर सीदीहिलाल को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। तानाजी अपने समय का प्रसिद्ध तलवार चलानेवाला था। चन्द्रावलि और हिलाल के सूँड़ और सिर उसकी तलवार की भेंट हो गये। तब उदयभानु ने अपने १२ लड़कों को मैदान में भेजा। ये भी काम आ गये, तब उसकी नींद टूटी।

अपनी १८ औरतों को अपने हाथ से मारकर और हाथ में नंगी तलवार लेकर पठानों की फौज के साथ उदयभानु किले से बाहर निकला और ५० मराठों पर टूट पड़ा। वह आक्रमण बड़ा वेगवान् था। दोनों सेनापति आमने-सामने आकर भिड़ गये। उदयभानु की तलवार तानाजी पर और तानाजी की तलवार उदयभानु पर एक ही समय में गिरी। दोनों वीर एक ही समय में धराशायी हो गये। उदयभानु की मृत्यु ने किलेवालों का दम तोड़ दिया, परन्तु मराठे हतोत्साह न हुए।

तानाजी के भाई सूर्याजी के सेनापतित्व में मराठा सिपाही 'हर-हर महादेव' की ध्वनि से आकाश को गुंजाते हुए किले पर टूट पड़े। द्वार पर कब्जा कर

लिया गया और शीघ्र ही सिंहगढ़ की चोटी पर महाराष्ट्र का भगवा झण्डा फहराने लगा। सिपाहियों ने किले के बाहर घुड़सालके कुछ छप्परों में आग लगाकर शिवाजी को सिंहगढ़-विजय की सूचना दे दी।

पाठ ११

होली

होली भारतवर्ष का बहुत पुराना त्योहार है। वैदिक काल से लोग इसे मनाते आ रहे हैं। इसे वसन्त-ऋतु का उत्सव भी कहते हैं। इस समय प्रकृति चारों ओर हरी-भरी हो जाती है। खेतों में गेहूँ, चना, मटर आदि की फसल लहलहाने लगती है। नर-नारियों का मन उमंग से भर जाता है। वे हँसी-खुशी मनाने को उत्सुक हो जाते हैं। प्राचीन काल में 'होला' को अग्नि में डालकर लोग उत्सव मनाया करते थे। 'होला' अधपके अन्न को कहते हैं। होला से ही 'होली' बन गया है। पहले यह केवल ऋतु-परिवर्तन का त्योहार था। बाद में पुराणकारों ने धीरे धीरे इसके साथ कृष्ण, प्रह्लाद आदि का भी संबन्ध जोड़ दिया। आज यह प्रान्त-भेद के अनुसार सारे देश में मनाया जाता है। कहीं इसे होली, कहीं शिमगा और कहीं दोलोत्सव या दोल-यात्रा कहते हैं। बंगाल में इसे

दोलोत्सव कहते हैं। वहाँ फागुन चतुर्दशी को सूर्यास्त के समय अग्नि की पूजा की जाती है। ब्राह्मण कृष्ण की मूर्ति पर थोड़ा-सा अबीर छिड़क देता है। इसके बाद लकड़ियों के ढेर में अग्नि जला दी जाती है और बाँस की बनी हुई 'होलिका' की अर्थी उस में डाल दी जाती है। यह 'होलिका-दहन' सार्वजनिक रुप में होता है। इसमें बालक, युवक और वृद्ध सभी हँसी-खुशी से भाग लेते हैं। जब लकड़ी के ढेर से आग की लपटें ऊपर उठने लगती हैं तब जनता उसकी परिक्रमा देती है और आगी तापती है। वह यह विश्वास करती है कि इससे उसके वर्ष भर के दुख-दारिद्रय जल जायेंगे। कहीं कहीं माताएँ अपने बालकों को तागे से ताप कर तागे को अग्नि में डाल देती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से उनके रोग-शोक जल जायेंगे। होली जलने के दूसरे रोज़ सबेरे ही कृष्ण की मूर्ति को झूले पर बैठाल दिया जाता है। जब झूला हिलने लगता है तब दर्शक भी मस्ती में झूमने लगते हैं। पूर्णिमा को सारे दिन पास-पड़ौस के मित्र आपस में मुख पर गुलाल मलते और रंग का छिड़काव करते हैं। बच्चे और होली खेलनेवाले सड़कों पर खड़े होकर आने जाने वालों पर रंग की पिचकारी छोडते हैं। कहीं कहीं भद्दी गालियाँ भी बकते हैं। ये गालियाँ 'कबीर' कहलाती हैं। आज के दिन लोग गालियों का बुरा नहीं मानते। लेकिन भले घर के स्त्री-पुरुष घर से बाहर निकलकर अपनी फ़जीहत नहीं करवाते।

उड़ीसा में 'दोलयात्रा' तो मनाई जाती है पर होली नहीं जलाई जाती। वहाँ गोस्वामी और ब्राह्मण कृष्ण की मूर्ति का जुलूस निकालते हैं और उसे खास खास व्यक्तियों के घर ले जाते हैं। वे उन्हें मूर्ति को चढ़ाया हुआ अबीर भेंट करते हैं जिसके बदले में उन्हें रूपया और वस्त्र भेंट दिया जाता है। वहाँ गोप-ग्वाले इस त्योहार को बड़े उत्साह से मनाते हैं। वे नये कपड़े पहनते हैं। अपने पशुओं को स्नान कराते और उन्हें बड़े चाव से रंगते हैं। वे दिन भर टोलियाँ बनाकर गली-सड़कों में नाचते दिखाई देते हैं। जो गीत वे गाते हैं, उनमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन होता है।

उत्तर भारत में यह उत्सव होली कहलाता है जिसका प्रारंभ वसन्त पंचमी से माना जाता है। फिर भी लोग वास्तविक उत्सव होली के दस बारह दिन पहले से ही मनाने लगते और लाल-पीले वस्त्र पहनना प्रारंभ कर देते हैं। परिवार में भोज शुरू हो जाते हैं और हँसी-खुशी के कार्यक्रमों का ताँता बंध जाता है। कहीं कहीं लोग ढोलक पर फाग गाने लगते हैं और मस्ती का समा बाँध देते हैं। गावों और शहरों में भी होली के कई दिन पूर्व से लकड़ी-कंडों का बटोरना शुरु हो जाता है। इन दिनों यदि सावधानी नहीं बरती गई तो मकान के आहाते से भी जलाऊ लकड़ियाँऔर अन्य लकड़ी का सामान तक चुरा ले जाने की स्वतन्त्रता काम में ले ली जाती है। यदि किसी ने

देख लिया तो कहेंगे "माफ कीजिये साहब, होली है। बहुत गिड़गिड़ाहट हुई तो कहेंगे, "अच्छा कुछ तो ले जाने दीजिये, हमारा सगुन मत बिगाड़िये"। घर के मालिक को लाचार हो चुप रह जाना पड़ता है। क्योंकि उसके मन पर भी रूढ़ियों के संस्कार अंकित रहते हैं। कोई भी सामान जब एक बार होली के ढेर में पहुँच जाता है,उसे वापस नहीं लाया जा सकता। होली के बाद रंग पंचमी तक गुलाल और रंग की पिचकारियाँ चलती रहती हैं। साफ़ कपड़े पहिनकर निकलना होली के हुड़दंगियों को कीचड़ पानी, रंग आदि डालने के लिये मानों निमन्त्रण देना है। राह चलतों को छेड़ना, उनपर फब्तियाँ कसना तो एक मामूली बात है। यहाँ 'कबीर' कहने की बड़ी प्रथा है।

मध्यप्रान्त में होली उत्तर भारत की तरह मनाई जाती है। राजस्थान में होली का उत्सव बसन्त पंचमी से लेकर होली के दिन "पूर्णिमा" तक मनाया जाता है। जनता को खूब हल्ला और आनंद-प्रमोद मनाने की छूट रहती है। सभी श्रेणी के व्यक्ति गाते और झूमते दिखाई देते हैं। अन्य प्रदेशों की भाँति यहाँ भी लोग होली के दिन सड़कों पर धूल अबीर फेंकते हैं। घोड़े पर सवार होकर अबीर की गेंद मारकर भी होली खेलने के दृश्य यहाँ आँखों के सामने आते हैं।

बम्बई प्रान्त में स्थान-भेद से उत्सव की विधि में भी भेद पाया जाता है। कहीं फाल्गुन शुक्ल नवमी

से पूणिमा तक, कहीं पूर्णिमा से अमावासी तक उत्सव का कार्यक्रम जारी रहता है। परन्तु होलिका-दहन का संस्कार पूर्णिमा को ही हर जगह सम्पन्न होता है। अन्य प्रान्तों की तरह यहाँ भी होली सार्वजनिक रूप में जलाई जाती है। होली के मध्य में आम, केला एरंड की डाली गाड़कर उसके चारों ओर लकड़ियाँ इकट्ठी की जाती हैं। शहरों में चौराहे पर होली जलाई जाती है। रात भर होली की आग को जलाये रखने का प्रयत्न किया जाता है। उत्तर भारत की तरह होली के दिन इस प्रान्त में भी चाय, काफ़ी के अतिरिक्त भंग पी जाती है, जुआ भी खेला जाता है। पूर्णिमा के दूसरे रोज प्रातःकाल होली की अग्नि से पानी तपाकर लोग स्नान करते हैं और होली की पूजा करते हैं। इसी रोज लोग मिष्ठान्न भोजन करते हैं और मन्दिरों में देव-दर्शन के लिये जाते हैं। जनता तरह तरह के स्वाँग रचकर मनोरंजन करती है। कृष्णलीला के गीतों की भरमार रहती है। कहीं कहीं निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ गुजराती गरबे के समान गीत गाती और घेरा देकर नाचती जाती हैं। कर्नाटक में किसान इस उत्सव को बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। पर वे मदिरा का स्पर्श नहीं करते और न अश्लील गीत ही गाते हैं।

तमिल प्रान्त में दोलोत्सव होली के बाद होता है। परन्तु होली के दिन 'काम-दहन' का उत्सव अवश्य मनाया जाता है। 'काम' की अर्थी निकालकर होलि

में जलाई जाती है। दक्षिण में शिव या विष्णु-मन्दिर के सम्मुख होलिका-दहन होता है।

यह प्रसन्नता की बात है कि धीरे धीरे जनता अश्लील गानों के प्रति विरक्त होती जा रही है और त्योहार की वास्तविकता को समझने लगी है। सच पूछा जाय तो यह सब जातियों में समानता स्थापित करने का त्योहार है। वर्ष समाप्ति के समय होली जलाकर हम केवल अपने मकान का कूड़ा-करकट ही नहीं जलाते वरन अपने मन के अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष को भी जलाते हैं। हमारे पूर्वज हर संस्कार को प्रतीक रूप में ही व्यक्त किया करते थे। होली में अन्तर (मन) और बाहर (शरीर) की शुद्धि का भाव छिपा हुआ है। इसलिये हमें चाहिये कि हम सब वर्ण और सब जातियों के प्रति प्रेमभाव धारण करें। यही होली का संदेश है।

पाठ १२

संत कबीर

संत कबीर हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने अपनी कविता के द्वारा हिन्दू और मुसलमान दोनों को उपदेश दिया और दोनों को सही रास्ते पर लाने की कोशिश की।

61|86|V

कबीर का जन्म कब और कहाँ हुआ था यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। एक किंवदन्ती है कि उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। ब्राह्मणी ने लोक-लज्जा के भय से बालक को काशी के निकट एक तालाब पर फ़ेंक दिया। संयोगवश नीरू नाम का एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी रास्ते से जा रहा था। उसने बच्चे का रोना

सुना तो पास जाकर उसे गोद में उठा लिया। नीरू के कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये उसने उसी बालक को पुत्रवत् पाला-पोसा। यह घटना शायद सन् १३९८ में हुई।

जुलाहे के घर में पालन-पोषण होने से स्वभावतः कबीर ने अपने माता-पिता का पेशा कपड़ा बुनना सीखा। उनके जीवन-निर्वाह का यही साधन था। वे रोज कपड़ा बुनते और उससे जो आय होती उसी पर गुज़र करते थे।

यह भी कहना कठिन है कि कबीर ने विवाह किया था या नहीं और उनके कोई सन्तान थी या नहीं। कहा जाता है कि कबीर ने लोई नामक एक स्त्री से विवाह किया था और उससे कमाल नाम का एक पुत्र हुआ था।

कबीर बाल्यावस्था से ही बड़े भावुक थे। उनके हृदय में सहज धार्मिक भावना भरी हुई थी। साधु-सन्तों की संगति उन्हें बहुत प्रिय थी। वे प्रायः अपने काम से छुट्टी मिलने पर उनके पास बैठते और उनके उपदेशामृत का पान करते। लोगों का विश्वास है कि कबीर ने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाया था। स्वामी रामानन्द उस समय के बहुत बड़े वैष्णव आचार्य थे और काशी में रहते थे।

कबीर बड़े ज्ञानी और भक्त थे। वे उन्हीं सिद्धांतों को मानते थे जिनको उनका मस्तिष्क स्वीकार करता था। उनके समय में हिन्दू और मुसलमान दोनों के

बीच कट्टरपंथी लोगों का प्रभाव अधिक था। उन्होंने दोनों की कड़ी आलोचना की और दोनों को उपदेश दिया।

कबीर जुलाहे के घर में पाले गये थ। उत्तर भारत में प्रायः सभी जुलाहे मुसलमान होते हैं। पर उनके धार्मिक संस्कार हिन्दू के थे। स्वामी रामानन्द के शिष्य होने के नाते भी उनमें हिन्दू भावनाएँ अधिक थीं। पर वे हिन्दू-धर्म के कट्टरपंथी विचारों को नहीं मानते थे। उनके आराध्य देव राम थे। पर उनके राम दशरथ के पुत्र साकार राम नहीं, परन्तु निराकार घटघटवासी परमपुरुष थे। वे निराकार की ही पूजा और भक्ति का उपदेश देते थे।

कबीर बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु साधु-सन्तों के सत्संग से उन्होंने दुनियाँ की बातों का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे अपने विचार कविता में ही लोगों के सामने रखते थे। यद्यपि उनकी कविता साहित्यिक दृष्टि से बहुत ऊँची नहीं कही जा सकती तो भी भावव्यंजना की दृष्टि से वह बहुत ऊँचे दर्जे की है। कबीर अपने विचारों को बड़ी सफलता के साथ कविता में प्रकट कर देते थे। सब से पहले कबीर ने ही धर्म जैसे गंभीर विषय को जनसमुदाय की भाषा में स्थान दिया।

कबीर की कविताओं में तीन विषय मुख्य हैं। उन्होंने देखा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों गलत रास्ते पर जा रहे हैं। दोनों धर्म के सच्चे रूप को छोड़कर पाखण्ड

में लीन हैं। इसलिए उन्होंने अपनी क वता में दोनों को डांटा और दोनों को सही माग पर लाने की कोशिश ी। उनकी कविता का दूसरा विषय है स्वानुभूति। यही उनका सर्वप्रिय और प्रधान विषय है। इसीमें उन्होंने अपने हृदय की सच्ची भावना व्यक्त की है। उन पदों को पढ़ने से हमें कबीर के सभी धार्मिक तत्वों, साधनाओं और विश्वासों का ज्ञान होता है। उनका ीसरा विषय है उपदेश। इसमें उन्होंने लोगों को सही मार्ग का उपदेश दिया है। उनके दोहे और पद अत्यन्त सुन्दर और मधुर हैं।

कबीर की शैली अत्यन्त सरल, सुबाध और आकर्षक है। उनकी शली पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। उन्होंने अपनी भाषा में अरबी, फारसी, संस्कृत–सभी तरह के शब्दों का प्रयोग किया है।

कबीर के शिष्यों में हिन्दू, मुसलमान सभी जाति क लोग थे। कबीर ने धर्म को संकुचित दायरे से निकालकर विशाल आंगन में खड़ा किया था। उन्होंने अपने धर्म में हिन्दू-मुसलमान दोनों का भेद मिटाने का प्रयत्न किया। कबीर ने उत्तर भारत में सन्तमत की जो धारा बहायी वह अब भी जारी है।

भूदान-यज्ञ

हिन्दुस्थान की बड़ी समस्याओं में एक है भू-समस्या। हिन्दुस्थान में लाखों किसान हैं जो साल भर खेती-बारी के काम में लगे रहते हैं। लेकिन इनकी हालत बड़ी खराब है। जिस ज़मीन में वे काम करते हैं उसके मालिक कहीं आराम से रहनेवाले ज़मीनदार होते हैं। किसानों को खेती का काम करने की पूरी आज़ादी नहीं है। साल भर काम करने पर भी उनको हमेशा पेट-भर भोजन भी नहीं मिलता। फसल का थोडा हिस्सा ही उनको खाने को मिलता है, बाकी ज़मीनदार को देना पड़ता है।

ज़मीन पर के अधिकार के संबंध में कुछ भाइयों ने कुछ दिनों से आंदोलन शुरू किया है। उन का कहना है कि ज़मीनदारों की भूमि छीनकर किसानों में बाँट देनी चाहिये। ज़मीन पर उन्हीं लोगों का अधिकार होना चाहिये जो उसमें खेती करते हैं। ये भाई अपने कार्य की सफलता के लिये हिंसात्मक कार्यक्रम भी बनाते हैं।

महात्मा गाँधी दुनियाँ में किसानों के तथा गरीबों के सब से बड़े बंधु थे। किसानों की बुरी हालत पर

आपने ही पहले पहल दृष्टि डाली थी। आप उनका उद्धार करने के कार्यों में अपना बहुत समय बिताते थे। आपने घोषित किया था कि किसानों को ज़मीन में खेती करने की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिये तथा फ़सल पर उनका ही पहला अधिकार है।

श्री विनोबा भावे महात्मा गाँधी के सच्चे अनुयायियों में प्रमुख हैं। गाँधीजी के साथ रहकर आपने गाँधीजी के तत्वों का पूरा ज्ञान पा लिया था। आज वे असल में गाँधीजी की प्रतिमूर्ति हैं। विनोबाजी ने हिन्दुस्थान की भू-समस्या हल करने के लिये भूदान-यज्ञ का पवित्र कार्य आरंभ किया। हैदराबाद के तेलंगाना प्रदेश के किसान बड़ी तकलीफ़ में पड़े हुए थे। विनोबाजी ने वहाँ जाकर ज़मीनदारों से ज़मीन माँग ली और किसानों को खेतीबारी करके सुखी जीवन बिताने की सारी व्यवस्था कर दी। फिर उन्होंने सारे देश में भ्रमण करना शुरू किया। बहुत से गाँधीवादी भाई-बहन भी इस महान कार्य में विनोबाजी के अनुयायी तथा सहायक बन गये। उनको लाखों एकड़ के हिसाब में ज़मीन मिल गई और बहुत से ज़मीनदारों ने ज़मीन के साथ पैसे भी दिये। इस धन से किसान खेती करने के औजार ले सकते हैं। तब भूमि तथा सामग्रियाँ पाकर किसान तथा गरीब स्वतंत्रता से काम कर सकते हैं और सुख-शांति से जीवन बिता सकते ह।

भूदान-यज्ञ आधुनिक युग का एक महान कार्य है। उसका नैतिक महत्व है, आध्यात्मिक महत्व है, राजनैतिक महत्व है, सामाजिक महत्व है तथा आर्थिक महत्व है। हवा और पानी किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति नहीं है और ईश्वर की देन मानकर लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार उनका भोग करते हैं। उसी प्रकार भूमि पर भी किसी व्यक्ति का अधिकार न होना चाहिये। उसपर सब का समान अधिकार होना चाहिये। जो लोग ज़मीन पर खेती करने के लिये तयार हैं उनको आवश्यक भूमि मिलनी चाहिये। तभी भूमि का सच्चा तथा उचित उपयोग होगा, अच्छी फ़सल पैदा होगी और लोग पेट भर खा सकेंगे। खुद काम न करके ज़मीन पर अधिकार रखने-वाले ईश्वर की नज़र में अपराधी हैं। उनको अपनी ज़मीन तुरंत छोड़ देनी चाहिये। ऐसे लोगों की ज़मीन लेने के लिये विनोबा भावेजी ने समितियाँ बनाई हैं। विनोबाजी अहिंसावादी हैं और वे ज़मीनदारों से ज़मीन छीनना नहीं चाहते हैं। उनको उनका पाप समझाकर प्रेम के साथ दान के रूप में ही लेना चाहते हैं। ऐसा प्रेम-व्यवहार करने से समाज में सहोदर-भाव और सुख-शांति स्थापित होगी।

——

पाठ १४

"हिमालय की सब से ऊँची चोटी पर"

१६ मई सन १९५३ को संसार की सबसे ऊँची चोटी "एवरेस्ट' पर मनुष्य ने विजय प्राप्त कर ली। सर जॉन हंट के दल के चढ़नेवालों में तेनसिंह नोरके ने सर एडमंड हिलेरी के साथ, एवरेस्ट पर पहुँचकर संसार में भारतीयों का मस्तक ऊँचा कर दिया। निश्चय ही यह हम लोगों के गौरव का विषय है, और इस समाचार से हमें बहुत हर्ष है।

जितना असाधारण काम यह जान पडता है, उससे कहीं अधिक यह कठिन है। पर्वत पर चढ़ना आसान नहीं है। इसके लिए साहस, शक्ति, धैर्य, सहन करने की शक्ति तथा लगातार अभ्यास की आवश्यकता है। तेनसिंह को यह विजय एकाएक नहीं मिली। १८ वर्ष की उम्र से पर्वतों पर चढ़ने का अभ्यास करने के उपरांत उसे बीस वर्षों बाद यह विजय मिल पाई है। एवरेस्ट की पिछली ११ चढ़ाइयों में से वह ७ में शामिल हुआ था तथा पिछले वर्ष पर्वत पर चढ़नेवाले स्विस दल के सदस्य की हैसियत से वह चोटी से केवल ८०० फुट नीचे तक पहुँचकर लौट आया था। क्यों?

क्योंकि एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए ऊपर लिखी आवश्यकताओं के अतिरिक्त पहाड़ी जलवायु के घोर कष्टों का सामना करने के सामान भी आवश्यक हैं।

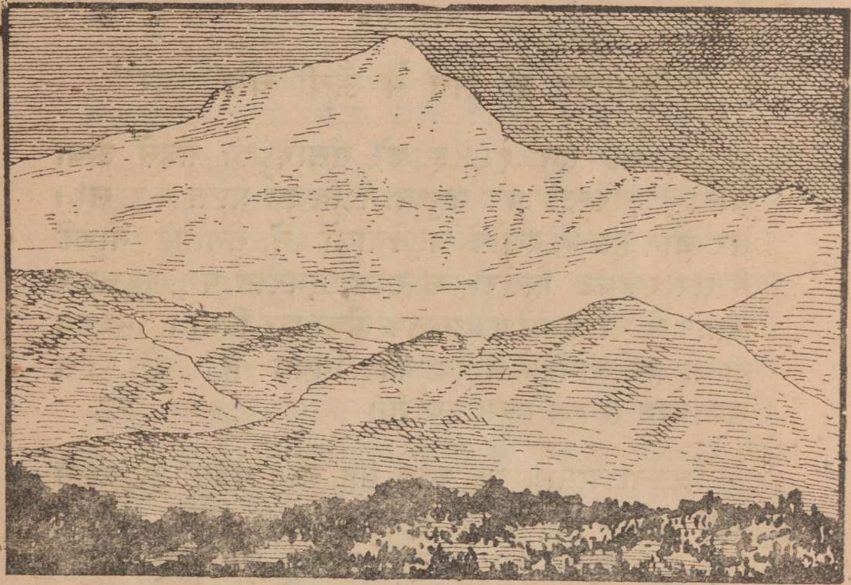

एवरेस्ट की ऊँचाई समुद्रतल से २६,१२० फूट है। इतना ऊँचाई पर वायुमंडल का दबाव इतना कम होता है कि नसें फटकर शरीर से बाहर निकलना चाहती है और ठंडक इतनी अधिक होती है कि शरीर का रक्त जमने लगता है। इसके लिए चढ़नेवाले लोग जानवरों की खाल का पोशाक पहनते हैं जो उनके सारे शरीर को कसकर ढंके रहती है। कई बार चढ़नेवालों को रक्त जम जाने के डर से एक दूसरे को चपत मारकर अपना रुधिर-संचार कायम रखना पड़ा था। इसके अतिरिक्त इतनी ऊँचाई पर हवा इतनी पतली होती

है कि दस कदम चलने पर ही मनुष्य हाँपने लगता है। फिर एवरेस्ट पर चढ़ने के परिश्रम का तो कहना ही क्या? इसके लिए चढ़नेवालों के प स आक्सीजन गैस का एक यंत्र होता है जो उनकी पीठ पर लदा होता है और इससे गैस निकलकर श्वास के द्वारा चढ़नेवालों के फेफडों तक पहुँचती है। इसकी वजह से थकावट नहीं आती और हवा की कमी नहीं जान पड़ती। पिछली चढ़ाई में गैस की कमी के कारण ही तेनसिंह को लौटना पडा था।

एवरेस्ट शिखर की ग्यारह चढ़ाइयाँ व्यर्थ नहीं गई। उनमें से कई तो अनुकूल जलवायु न होने के कारण असफल रहीं। पिछली चढ़ाइयों में चढ़नेवालों के पास आक्सीजन यंत्र भी नहीं था। कई बार, इस महान चढ़ाई में भयानक तूफ़ानों तथा हिम के आक्रमणों से कई व्यक्तियों को अपना बलिदान कर देना पड़ा। किन्तु इन चढ़ाइयों के अनुभवों पर प्रत्येक अगली चढ़ाई क्रमशः सफलता प्राप्त करती गयी।

इन चढ़ाइयों द्वारा एवरेस्ट के लिए सबसे सुगम मार्ग का भी पता लगा जिससे होकर आखिरी चढ़ाई सफल हो सकी। इन चढ़ाइयों के लिए संसार एरिक शिप्टन और एच० डब्ल्यू० हिलमान का बड़ा कृतज्ञ है। पर्वत पर चढ़नेवालों में इन वीरों ने हिमालय की विस्मृत श्रेणी पर कई बार चढ़ाइयाँ कीं और स्विटजरलैंड के एरिक शिप्टन के खोजे हुए मार्ग से

चलकर इस वर्ष ब्रिटिश चढ़ाईवाले सफल हो सके। अतः एवरेस्ट-विजय एक दल अथवा एक चढ़ाई-वाले की कीर्ति नहीं है। वह तो पिछली चढ़ाइयों के लगातार प्रयत्नों का फल है।

एवरेस्ट शिखर पर चढ़नेवालों में दो महान व्यक्तियों के नाम उल्लेख के योग्य हैं। ये हैं दिलेर मलेरी और इरविन। पर्वत पर चढ़नेवाले ये वीर सन १९३३ में २८,१५० फुट तक बिना आकसीजन-यंत्र की सहायता के पहुँच गये थे। अनेक कष्टों को सहते हुए शिखर के अत्यंत निकट पहुँचकर ये अदृश्य हो गये। मनुष्य की जानकारी बढ़ाने के लिए इन महान वीरों ने अपना बलिदान कर दिया।

पर्वतों पर चढ़ना इतना खतरनाक होते हुए भी दिलचस्प है। चढ़ाई के समय के कष्टों के उपरान्त विजय-श्री लेकर उतरना बड़ी नामवरी की बात है। किन्तु पर्वत पर चढ़ना मनोरंजन का भी एक अद्वितीय साधन है। पर्वत के नीचे के भागों की हरियाली मन मोह लेती है। ऊँचे ऊँचे देवदारु तथा सनोवर के वृक्ष, पत्तियाँ हिला हिलाकर, चढ़नेवालों का स्वागत करते हैं। सुहावने वन की मीठी मरमर-ध्वनि पक्षियों के कलरव के साथ मिलकर आनंद देती है। शरीर में नयी स्फूर्ति भर जाती है। पर्वतों के बीच बाच से बहती हुई पहाड़ी नदी का शीतल तथा वेग से बहता हुआ जल अति स्वच्छ व निर्मल दिखाई देता है। उसे

देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है। उसका एक घूँट अमृत के सदृश होता है।

ऊँचे शिखरों के ऊपर नीला आकाश और हिम पर पड़ती हुई प्रातः काल के सूर्य की आभा एक अनोखा चित्र आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं। इसके सामने मनुष्य की सारी कृतियाँ फीकी मालूम पड़ने लगती हैं। ऐसे ही सुहावने स्थानों पर हमारे ऋषियों ने देवताओं का निवास माना है। प्रकृति की इस अनोखी छटा को देखकर श्रद्धा से मस्तक अपने आप झुक जाता है।

—

पद्यभाग

पाठ १५

चरखा

रवि भुवि शशि सम चाल तुम्हारी,
भारत-जन-मन-हारी ।। रवि० ।।
सुर मुनि किन्नर नर नारी,
चरखे पर बलिहारी ।। रवि० ।।

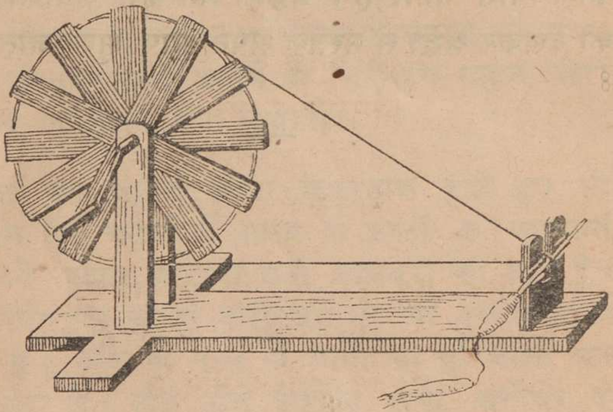

तुम समान हो चक्रायुध के,
शस्त्र सशक्त महात्माजी के,
साधन अनुपम ग्रामीणों के,
शक्ति प्रदायक भारी ।। रवि० ।।

पाठ १६

जननी

हे जननी, हे जन्म-दायिनी जननी, मेरी,
हो जाता मन विकल याद आते ही तेरी।
समझा तू ने सदा मुझे आँखों का तारा,
मुझे समझती रही सदा प्राणों से प्यारा।

तू ने अनेक दुख हैं सहे
सुखपूर्वक मेरे लिये।
तू ने मेरे कल्याण-हित
क्या-क्या यत्न नहीं किये।।

कोई पीड़ा छुई ज़रा-सी भी जब मुझको,
मुझसे दूना दुःख हाय ! व्यापा तब तुझको।
रात-रात भर तुझे दृगों में नींद न आई,
जिस प्रकार हो सका शीघ्र वह व्यथा मिटाई।

मेरे सुख में सुख था तुझे,
दुख में दुःख रहा सदा,
मुझसे सर्वत्र अभिन्न था
तेरा तन-मन सर्वदा।

अर्द्धरात्रि के समय सभी जब सो जाते थे,
जब अवनी-आकाश तिमिरमय हो जाते थे,
तू पंखे से व्यजन मुझे तब भी करती थी,
थपकी देकर क्लान्ति सभी मेरी हरती थी।

प्रभुवर के पुण्य प्रसाद-सा
मुझ पर तेरा स्नेह था।
पाकर मैं उसको हे जननि,
सुकृती निस्सन्देह था।

फुनसी-फोड़े जब कि हो गये मेरे तन में,
मुझे देखकर घृणा हुई औरों के मन में।
तब भी माँ, तू मुझे हृदय से रही लगाये,
वैसा ही वात्सल्य-भाव तू रही जगाये।

तू खिल जाती थी चित्त में
मुझको मुदित निहार के,
तू मुझे खिलाती थी सदा
मुझपर सब कुछ वार के।

काटा मैंने नयी उठी दंतुली से तुझको,
किया और भी अधिक प्यार तब तूने मुझको।
छींट दिया जल शीत-काल में तेरे ऊपर,
तब भी तूने प्रेम किया माँ, मेरे ऊपर।

जब इन बातों की याद ही
मुझको आ जाती कभी,
गदगद हो जाता है हृदय,
आँखें भर आतीं तभी

भोजन करता हुआ मचल जब मैं जाता था,
जब न एक भी ग्रास और मुझको भाता था।
तब हे जननी, विविध प्रलोभन तू दे-देकर,
करती थी अनुकूल मुझे गोदी में लेकर

अति ही अमूल्य थीं लोक में
वे तेरी बातें सभी,
उस समय हाय! इस बात का
ज्ञान हुआ न मुझे कभी।

जब मैं मन में कभी किसी कारण दुख पाकर,
कर उठता था रुदन एक कोने में जाकर।
बहलाती थी चित्त अहा! तब तू ही मेरा,
गुण-वर्णन मैं करूँ कहाँ तक हे माँ! तेरा।

मैं बार-बार फिर जन्म लूँ
यह सुख पाने के लिए,
तो भी हे जननी, तनिक भी,
तृप्ति नहीं होगी हिए

मुझ पर तेरी दया-दृष्टि संतत रहती थी,
प्रतिदिन सन्ध्या-समय कहानी तू कहती थी।
मेरा कहना नहीं कभी भी तूने टाला,
प्रेमामृत ही सदा-सर्वदा मुझ पर ढाला।

आकर मुझ पर फेर दे
हे माँ, तू निज हाथ ही,
तो पड़ जावे हृदयाग्नि पर
पानी उसके साथ ही।

पाठ १६

जन्मभूमि

जहाँ जन्म देता हमें है विधाता,
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता।
जहाँ हैं हमारे पिता, बंधु, माता,
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥

जहाँ की मिली वायु है जीव-दानी,
जहाँ का भिदा देह में अन्न-पानी।

भरी जीभ में है जहाँ की सुबानी,
वही जन्म की भूमि है भूमि-रानी ।।

लगी धूल थी देश में जो हमारी,
कभी चित्त से हो सकेगी न न्यारी ।
बनाती रही देह को जो निरोगी,
किसे धूल ऐसी सुहाती न होगी ?

पिला दूध माता हमें पालती है,
हमारे सभी कष्ट भी टालती है ।
उसी भाँति है जन्म की भू उदारा,
सदा संकटों में सुतों का सहारा ।।

कहीं जा बसें, चाहता जी यही है,
रहे सामने जन्म की जो मही है ।
नहीं मूर्ति प्यारी कभी भूलती है,
छटा लोचनों में सदा झूलती है ।।

यथा इष्ट है गेह, त्यों ही पुरा है,
नहीं एक अच्छा, न दूजा बुरा है ।
पुरी, प्रांत, त्यों देश भी है हमारा,
सभी ठौर है जन्म-भू का पसारा ।।

जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है,
जिसे देश की याद आती नहीं है,
कृतघ्नी महा कौन ऐसा मिलेगा ?
उसे देख जी क्या किसीका खिलेगा ?

धनी हो बड़ा या बड़ा नामधारी,
नहीं है जिसे जन्म की भूमि प्यारी,
था नीच ने मान-संपत्ति पायी,
बुरे के बढ़े से हुई क्या भलाई ?

जिन्हें जन्म की भूमि का मान होगा,
उन्हें भाइयों का सदा ध्यान होगा।
दशा भाइयों की जिन्होंने न जानी,
कहेगा उन्हें कौन देशाभिमानी ?

कई देश के हेतु जी खो चुके हैं,
अनेकों धनी निर्धनी हो चुके हैं।
कई बुद्धि ही से उसे हैं बढ़ाते
यथाशक्ति हैं वे ऋणों को चुकाते ।।

दयानाथ ! ऐसी हमें बुद्धि दीजे,
दशा देश की देख छाती पसीजे।
दुखों से बचाते रहें देश प्यारा,
बनावें उसे सभ्य सत्कर्म-द्वारा ।।

पाठ १८

युवक को मुनि का उपदेश

बोले मुनि—हे पुत्र ! देश की है गति अति प्रतिकूल।
धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है स्वजाति का मूल।
जहाँ स्वर्ग-सुख भोग रहे थे अति प्रसन्न सब लोग।
आज वहाँ पर गरज रहे हैं नित दुकाल दुख रोग ।।

नरक यन्त्रणा से बढ़कर ९ छाया संकट घोर !
मानव-दल में मची हुई है त्राहि त्राहि सब ओर।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, उद्यम का न उपाय।
वन भी नहीं, ठौर टिकने को कहाँ जायँ ? क्या खायँ ?

लाखों नहीं करोड़ों को है सुख से हुई न भेंट।
मिलता नहीं जन्म भर उनको खाने को भर पेट।
दिखती नहीं किसी के मुँह पर प्रसन्नता की रेख।
भ्रमते हुए पेट-चिन्ता में पड़ते हैं सब देख ।।

चोरी, जार., छल, प्रपंच, अघ, आडम्बर, पाखंड।
बढ़ते जाते हैं जनता में दुर्गुण परम प्रचंड।
सबका एक मूल कारण है दरिद्रता विकराल।
घर-घर में हैं भरे भूत-से भूखे नर कंकाल ।।

इस कुतंत्र में तो दरिद्रता कभी न होगी दूर।
यह कर देगा शीघ्र जाति को निर्बल चकनाचूर।
जब तक इस कुतंत्र - बंधन से होंगे हम न स्वतंत्र।
तब तक सिद्ध न हो सकता है कोई हितकर मंत्र ।।

कैसा है सुगन्धमय सुन्दर यह गुलाब का फूल।
पर इसकी डालों में हैं ये कैसे तीखे शूल।
लोग चूमते चिपकाते हैं उर से प्यारा फूल।
शूल बिना उसका कब बचता डाल पात तन मूल ?

पर यह जाति नितान्त सरल है निरी दयालु उदार।
उठा रहे हैं लोग निरंकुश इससे लाभ अपार।

तुमको इसके उन्नति-पथ में बहुत मिलेंगे कष्ट।
स्वार्थी सदा प्रयत्न करेंगे करने को पथ-भ्रष्ट।।

पर तुम नहीं हिचकना बेटा! करना मन न उदास।
रखना सदा आत्मबल ऊपर अटल-अचल विश्वास।
आते ह विघ्नों के झोंके बारंबार प्रचण्ड।
गिरते हैं तरु, पर रहता है गिरिवर अखण्ड।।

पहिए को देखो, यदि पृथ्वी करे न अवरोध।
क्या वह आगे बढ़ सकता है करके भी अतिक्रोध?
विघ्नों से ही कर सकता है उन्नति को बल प्राप्त।
विघ्न मिटा समझो उन्नति की गति हो गई समाप्त।।

विघ्नों से जाकर भिड़ जाना सम्मुख सहना तीर।
ऐसा साहस ही कर देगा अमर अभेद्य शरीर।
जो रहती है जाति जगत में मरने को तैयार।
वही अमरता का पाती है ईश्वर से अधिकार।

बेटा! जाओ, करो देश-हित के सब उत्तम काम।
शुभ अभिलाषा का देता है ईश्वर शुभ परिणाम।
मन उन्नत करना जनता का मिथ्या भय कर दूर।
संग्रह करते रहना चुनकर सबल साहसी शूर।

क ो किसी से घृणा न करना मत करना बकवाद ।
विरोधियों की चाल समझना करना नहीं प्रमाद ।
जाओ मिलकर के समाज में काम करो चुपचाप ।
जैसा तुम्हें चाहिए वैसा पहले बनना आप ।।

देश भक्त का हृदय बड़ा ही होता है बलवान ।
शय्या काँटों की लगती है उसको फूल समान ।
विचलित उसे न कर सकता है कभी मान-अपमान ।
उसे कहाँ सुधि कष्टों की है, है वह प्रेम- ्धान ।।

पाठ १६

विजया-दशमी

'साथ लेकर दैत्य की सेना सभी
वीर महिषासुर प्रबल है आ रहा ;
इस सुभग अमरावती को लूटने !
—आ किसी ने देवपति से यों कहा । ।। १ ।।

इस अचानक युद्ध के संवाद से,
सुरगणों में खलबली-सी मच गयी ;

पर, व्यथा की एक भी रेखा नहीं
दृष्टि-गोचर शक्र के मुख पर हुई ! ॥ २ ॥

अधर, बाँहें युगल फड़के क्रोष से,
खींच असि को कोष से सत्वर लिया
देख लो, अब उस भयानक वेश ने
कायरों का हृदय कंपित कर दिया। ॥ ३ ॥

फिर विकंपित समिति को करते हुए,
वचन बोले क्षुब्ध स्वर से इन्द्र यों–
'ऐ सुरो, हो के अमर तुम इस तरह
हो रहे हो राक्षसों से भीत क्यों? ॥ ४ ॥

'देवताओं को हरा दें युद्ध में,
हो उन्हें सकती कभी हिम्मत नहीं!
न्यायपूर्वक देव-बल से भी भला
जीत सकता आसुरी-बल है कहीं ॥ ५ ॥

'हो सभी तैयार मिल कर शीघ्र ही
सैनिकों के अमित अपने संग में;
शत्रुओं के चूर कर अभिमान को
कुचल डालो जा उन्हें रण-रंग में! ॥ ६ ॥

श्रवण कर सुर ये वचन सुरराज के
जोश से उन्मत्त मानों हो गये;

देश के प्रति प्रेम उन के हृदय में
जग गया, सद्भाव भी उपजे नये! ॥७॥

कर घनाघन अखिल विश्व-समूह को
युद्ध-हित वे शीघ्र ही प्रस्तुत हुए;
हो सुसज्जित शस्त्र से सब देव-गण
देश-हित बलिदान होने चल दिये! ॥८॥

निमिष भर में ही हज़ारों दैत्य-गण
खड्ग आदिक हाथ में ले आ जुटे।
समर करने के लिए रण-भूमि में
वे सभी चीत्कार करते आ डटे ॥९॥

मातु दुर्गा ने संभाली निज गदा;
तीर, धन्वा औ महा करवाल को।
पाटने अरिमुण्ड से भू को लगी;
काटने वह लग गयी रिपु-जाल को। ॥१०॥

इस तरह बहु-समय लौं अनवरत ही
युद्ध दोनों दलों में होता रहा;
अन्त में जयशालिनी दुर्गा हुई;
एक भी दानव नहीं जीता बचा। ॥११॥

दनुज महिषासुर सभी निज सैन्य के
साथ ही उस समर में मारा गया;

निर्जरों के भाग्य-रूपी भानु का
पूर्व दिशि में सुभग सुखदोदय हुआ ! ॥ १२ ॥

उस समय से हिन्दुओं में आज तक
यह प्रथा प्रतिवर्ष है आती चली ;
लोग हैं विजया मनाते हर्ष से,
अर्चना जगदम्ब की कर के भली ! ॥ १३ ॥

पाठ २०

कबीर के दोहे

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ १

हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माँहि।
बगा ढँढ़ोरे माछरी, हंसा मोती खाँहि ॥ २

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुंदर मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥ ३

साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकना चूर ॥ ४

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप ।
जाके भीतर साँच है, ताके भीतर आप ।। ५

जाको राख साइयाँ मारि सक नहिं कोय ।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय ।। ६

सिंहन के लहँडे नहीं हंसन की नहीं पाँत ।
लालन की नहिं बोरियाँ साधु न चले जमात ।। ७

आए हैं सो जायँगे राजा रंक फ़कीर ।
एक सिंहासन चढ़ि चले एक बँधे जंजीर ।। ८

केसन कहा बिगरिया जो मूँडौ सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूँडिये जा में विषै विकार ।। ९

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार ।
ताते ये चक्की भली पीस खाय संसार ।। १०

पाठ २१

रहीम के दोहे

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल ।
आपु तौ कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ।। १

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।। २

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
रहिमन बिगरे दूध के, मथे न माखन होइ।। ३

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरबारि।। ४

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पानि।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सँचहि सुजानि।।

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि।। ६

खैर, खून, खाँसी, खुसी, वैर, प्रीति, मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।। ७

अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम।। ८

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लख न कोई।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होई।। ९

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहूँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।। १०

पाठ २२

वृन्द के दोहे

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास॥ १

अपनी पहुँच विचारिकै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥ २

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निशान॥ ३

अति परिचै तें होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय॥ ४

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय॥ ५

DC Library
00013601
T79 R14